श्रीचण्डमहारोषणतन्त्रम्

(संस्कृत मूल एवं हिन्दी अनुवाद)

Śrīchaṇḍamahāroṣaṇatantram

काशीनाथ न्यौपाने

Kashinath Nyaupane

INDIAN MIND

Śrīchaṇḍamahāroṣaṇatantram

(Sanskrit Text with Hindi Translation)

Translated By

Kashinath Nyaupane

श्रीचण्डमहारोषणतन्त्रम्

(संस्कृत मूल एवं हिन्दी अनुवाद)

सम्पादन एवं हिन्दी अनुवाद

काशीनाथ न्यौपाने

INDIAN
MIND

First Edition 2016

Published by **Indian Mind**, Varanasi.
website : www.indianmind.co.in
e-mail : indianmindindia@gmail.com

Sole Distributor
* **Indica Books,** D, 40/18, Godowlia,
  Varanasi 221 001 (U.P.)
  India
* **Indica Books,** Assi Ghat,
  Varanasi 221 001 (U.P.)
  India
* **Indian Mind,** 301, D.D.A. Flats,
  Badarpur, New Delhi - 110044.

e-mail : indicabooksindia@gmail.com
website : www.indicabooks.com

ISBN : 81-86117-26-1

Designed by : Deepraj Jaiswal

Printed in India by
Dee Gee Printers
Varanasi. Cell :91+9935408247

विषयसूची

*

प्रकाशकीय

वज्रयान का यह अत्यन्त प्रसिद्ध **श्रीचण्डमहारोषणतन्त्र** का प्रकाशन कर पाठकों के हाथों में सौंपते हुए मुझे अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है।

यह ग्रन्थ प्रथमवार समग्र रूप में प्रकाशित हुआ है। इससे पहले इसके कुछ पटल ही रोमन लिपि में प्रकाशित हुए थे।

प्रस्तुत संस्करण हिन्दी अनुवाद के साथ होने से भी हिन्दी भाषी पाठकों के लिए तथा हिन्दी समझने वाले विद्यार्थी एवं तन्त्र साधकों के लिए नितान्त उपयोगी होगा – ऐसा मुझे विश्वास है।

विगत कई वर्षों से इस काम में एकाग्र होकर लगे हुए थे प्रो० डा० काशीनाथ न्यौपाने। उनके विद्वतापूर्ण श्रम का ही यह फल है, जो आज इसे पाठकों को सौंपने का मधुर, महत्त्वपूर्ण अवसर हमें प्राप्त हुआ है। प्रो० डा० न्यौपाने द्वारा अनुदित एवं सम्पादित अन्य तन्त्र ग्रन्थों की तरह ही यह भी आपके मन को भाएगा और हमें अन्य ग्रन्थों के प्रकाशन में प्रेरणा प्राप्त होगी यह मुझे विश्वास है।

बौद्ध तन्त्रों का यह प्रकाशन कार्य इसी प्रकार जारी रखने के लिए हम कटिबद्ध हैं। आपके सहयोग की आवश्यकता है।

दिलीप कुमार
इण्डिका बुक्स एवं इण्डियन माइंड

दिनांक २०१६, ७ मार्च
शिवरात्रि

पूर्वपीठिका

नेपाल के हस्तलेख संग्रहों में अनेक ऐसे ग्रन्थ हैं जो अबतक प्रकाशित नहीं हुए हैं। उन्हीं में से यह महत्त्वपूर्ण बौद्धतन्त्र का ग्रन्थ उपलब्ध हुआ है, जिसका सम्पादन एवं हिन्दी अनुवाद कर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। विगत दो वर्षों से मैं इसके सम्पादन और अनुवाद में लगा हुआ था, अब आकर यह कार्य पूर्ण हुआ। वज्रयान का यह तन्त्र ग्रन्थ अन्यन्त अद्‌भुत है। बहुत ज्यादा विषय इस ग्रन्थ में वर्णित हैं। इसमें कुल २५ पटल हैं।

इस ग्रन्थ का प्रारंभ भी अन्य तन्त्र ग्रन्थों के तरह ही **'एवं मयाश्रुतम्' एकस्मिन् समये भगवान्''** ---- विजहारग इत्यादि वाक्यों से हुआ है।

'मयाश्रुतम्' से यह उपदेश ''मैंने ही सुना है और किसी के द्वारा परम्परागत रूप से नहीं सुना है'' यही निर्देश किया है। अर्थात् साक्षात् भगवान् तथागत के मुख से स्वयं मैंने सुना है। जिस समय इसका उपदेश किया गया था उस महत्त्वपूर्ण अवसर पर मैं स्वयं वहाँ उपस्थित हुआ था। अतः इसके प्रमाणिकता में सन्देह नहीं होना चाहिए। यही इस **''एवं मयाश्रुतम्''** वाक्य का रहस्य है। प्रायः सभी इस प्रकार के तन्त्र एवं पारमिता ग्रन्थों में निदान वाक्य के रूप में यही उपलब्ध होता है।

पटल - १

प्रथम पटल ग्रन्थ का प्रारंभिक परिच्छेद होने से इसमें ग्रन्थारम्भ की स्थिति को दिखाते हुए ग्रन्थकार किसी एक समय भगवान् वज्रसत्त्व ने सर्वतथागत

काय वाक् चित्त हृदय वज्रधातु ईश्वरी के भग में विहार किया। यही प्रारंभ वाक्य हैं। भगवान् के साथ अनेक तथागत एवं वज्रयोगी गण और योगिनियाँ भी अवस्थित हैं। यहाँ पर प्रमुख रूप में हैं –

श्वेताचल वज्रयोगी
पीताचल वज्रयोगी
रक्ताचल वज्रयोगी
मोहवज्री वज्रयोगिनी
पिशुनवज्री वज्रयोगिनी
रागवज्री वज्रयोगिनी

ईर्ष्यावज्री वज्रयोगिनी। वे प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त योगि–योगिनियों की सङ्ख्या के लिए ग्रन्थकार बताते हैं – **एवं प्रमुखैर्योगि–योगिनी–कोटि–नियुतशत–सहस्त्रैः**। अर्थात् अनन्त योगि–योगिनियाँ भगवान् के उपदेश को सुनने के लिए अवस्थित हैं। ऐसी महनीय अवस्था में भगवान् वज्रसत्त्व ने कृष्णाचल–समाधि में प्रविष्ट होकर यह उद्‌गार व्यक्त किया –

भावाभावविनिर्मुक्तः चतुरानन्दैकतत्परः।
निष्प्रपञ्चस्वरूपोऽहं सर्वसङ्कल्पवर्जितः॥ १/२

[अर्थात् – भावाभाव दोनों से मैं मुक्त हूँ (अद्वय) और चार आनन्दों में निमग्न हूँ। निस्प्रपञ्चस्वरूप होने से सभी सङ्कल्पों से रहित भी हूँ]

मां न जानन्ति ये मूढाः सर्वपुम्वपुषि स्थितम्।
तेषामहं हितार्थाय पञ्चाकारेण संस्थितः॥ १/३

[जो मूढ व्यक्ति सभी पुरुषों में अवस्थित मुझे नहीं जानते उनके हित के लिए मैं पाँच आकार में स्थित हुआ हूँ]

इस प्रकार भगवान् वज्रसत्त्व के उद्‌गार को सुनकर वज्रधातु ईश्वरी ने द्वेषवज्री नामक समाधि में प्रविष्ट होकर यह उद्‌गार प्रकट किया–

शून्यताकरुणाभिन्ना दिव्यकामसुखस्थिता।
सर्वकल्पविहीनाहं निष्प्रपञ्चा निराकुला॥ १/४

[करुणा से अभिन्न शून्यता है। अर्थात् शून्यता और करुणा में भेद नहीं

है, मैं वही शून्यता, जो करुणा से अपृक् है, हूँ, इसीलिए दिव्य काम सुख में स्थित भी हूँ। सभी विकल्पों से रहित, निष्प्रपञ्च एवं निराकुल भी हूँ]

मां न जानन्ति या नार्यः सर्वस्त्रीदेहसंस्थिताम्।
तासामहं हितार्थाय पञ्चकारेण संस्थिता॥ १/५

[जो स्त्रियाँ सभी नारियों के शरीर में अवस्थित मुझे नहीं जानती हैं उनके हित के लिए मैं पञ्चाकार में अवस्थित हुई हूँ]

इस प्रकार इस तन्त्र ग्रन्थ्र का प्रारंभ हुआ है।

प्रथम पटल में ग्रन्थ का निदान एवं उपोदघात दोनों प्रकट हुए हैं। **'एवं मयाश्रुतम्'** यह निदान वाक्य है। इस प्रकार तन्त्र के आरंभ होने के बाद ग्रन्थकार सभी बुद्धों द्वारा भाषित इस महनीय ग्रन्थ के अधिकारी का निरुपण तथा प्रयोजन एवं शिष्य तथा गुरु का विवेचन करते हैं। इस तन्त्र ग्रन्थ के द्वारा वर्णित विषयों के अभ्यास से प्रज्ञा में साधक स्थिर हो जाता है।

शिष्य की परीक्षा करके ही उत्तम शिष्य को इसके उपदेश का नियम बताया है। इस प्रकार इस तन्त्र के महत्त्व का भी उल्लेख इस प्रथम पटल में किया गया है।

पटल - २

दूसरे पटल में मण्डल के विषय में भगवती द्वेषवज्री ने भगवान् चण्डमहारोषण से प्रश्न किया है।

मण्डल का मान (परिमापन) कितना होना चाहिए। किस प्रकार इसे बनना चाहिए। कैसे इसका लेखन करना चाहिए, यही प्रश्न है इसी के उत्तर के रूप में ही यह द्वितीय पटल ग्रथित है।

विस्तार पूर्वक मण्डल निर्माण विधि बताकर अन्त में उस मण्डल के अधिष्ठान मन्त्रों का निर्देश किया गया है। ॐ श्री चण्डमहारोषण सर्वपरिवारसहित आगच्छ आगच्छ जः हूं वं होः अत्र मण्डले अधिष्ठानं कुरु हूँ

फट् स्वाहा। यह मूलमन्त्र है इसी प्रकार अनेक अन्य मन्त्रों का भी यहाँ उल्लेख किया गया है।

पटल - ३

इस पटल के प्रारंभ में ही शिष्य की गुणवत्ता, भव्यता के विषय में भगवती पूछती है। कैसे उसे दीक्षित करना चाहिए इत्यादि प्रश्नों के बाद भगवान् उत्तर देते है -

सबसे पहले त्रिशरण की शिक्षा देनी चाहिए। फिर पाँच शिक्षायें, फिर पोषध (प्रतिज्ञा) उसके बाद पञ्चाभिषेक, अनन्तर गुह्य और प्रज्ञा की दीक्षा देनी चाहिए। इस प्रकार शिष्य भव्या हो जाता है। उसे ही इस तन्त्र की देशना की जानी चाहिए।

पाँच शिक्षायें हैं, - जिनका सेवन नहीं करना है। मारण, चौर्य, परस्त्री, झूठ, मद्य।

इसी प्रकार **'पोषध'** नियमित पालन किए जाने वाले व्रत भी हैं।

इसके बाद उदकाभिषेक का विधान है। मुकुटाभिषेक, खड्गाभिषेक, पाशाभिषेक, नामाभिषेक, गुह्याभिषेक।

इस प्रकार तीसरा पटल भी पूर्ण होता है।

पटल - ४

इस चौथे पटल में - चण्डरोषण के साधक को किस प्रकार साधना करनी चाहिए तथा किस प्रकार किस मन्त्र का किस जगह जप करना चाहिए यह प्रश्न किया गया है। इसी के उत्तर में यह समग्र पटल संलग्न है।

इसके लिए उत्तर है -

मनोनुकूल स्थान में, जहाँ विघ्न न हो, आसन लगाकर बैठना चाहिए। जो उपलब्ध है उसी का आहार करना चाहिए।

साधक को सर्वप्रथम मैत्री की भावना करनी चाहिए। फिर करुणा, मुदिता, उपेक्षा।

इसके बाद चण्डमहारोषण का ध्यानपूर्वक जप करने की विधि बताई गई है।

मन्त्र भी यहाँ बताया गया है – **ऊँ शून्यता ज्ञानवज्रस्वभावात्मकोऽहम्**।

इस प्रकार इस पटल में अनेक ध्यान–जप के विषय उठाए गए हैं। अन्तिम में प्रज्ञा साधना के विषय भी बताए गए हैं।

पटल – ५

इस पटल में 'मन्त्र समुगाय' बताया गया है। अर्थात् सभी मन्त्र एक ही जभ्रह उपदिष्ट हैं।

ऊँ चण्डमहारोषण हूँ फट् – यह मूलमन्त्र है।

ऊँ अचल हूँ फट् – यह दूसरा मूलमन्त्र है।

ऊँ हूँ फट् – यह तृतीय मूलमन्त्र है।

हूँ हृदयमन्त्र।

इस प्रकार मालामन्त्र, सामान्यमन्त्र तथा विषेश मन्त्रों का भी उपदेश किया गया है।

पटल – ६

इस पटल में स्त्रियों के अनेक स्वरूपों का वर्णन करते हुए 'प्रज्ञा' ही स्त्री है यह दिखाया गया है। साथ ही सभी स्त्रियों का पूर्ण आदर करना चाहिए। क्योंकि वे ही प्रज्ञा की मूर्तियाँ हैं यह भी बताया गया है। यहाँ स्त्रियों के साथ विभिन्न एवं विचित्र संगम का वर्णन भी है। यह अत्यन्त लम्बा पटल है। इसमें ६४ श्लोक हैं।

पटल - ७

स्त्री के साथ समागम से मनुष्य में अत्यधिक श्रम होता है। यह स्त्री प्रज्ञा है। जिसके साथ योग द्वारा संगम किया जाता है अतः निश्चय भी श्रम होना ही है। अतः उक्त श्रम के निवारणार्थ प्रश्न किया गया है। उसके उत्तर में अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थों का वर्णन भी है। उन्हीं के भोजन तथा पूर्ण विश्राम पूर्वक उस श्रम का, थकान का निराकरण करने हेतु विशेष विधान का उपदेश भगवान् वज्रसत्त्व करते हैं।

यहाँ भक्षण के लिए विभिन्न मांस तथा मत्स्य का विधान है। साथ ही मद्यपान की बात भी यहाँ हुई है। साथ ही अनेक विध पेय एवं भोज्य तथा लेह्य पदार्थों का वर्णन भी है।

पटल - ८

इस पटल में योगियों के द्वारा किस प्रकार प्रज्ञा की उपासना करनी चाहिए। और वह स्त्री किस रूप में कहाँ स्थित है? उसका स्वरूप क्या है? उपासना का विधान क्या है? इन्हीं प्रश्नों को ध्यान में रखकर ही यह पटल उपदिष्ट हुआ है।

स्त्रियः स्वर्गः स्त्रियो धर्मः स्त्रिय एव परंतपः।
स्त्रियो बुद्धः स्त्रियः सङ्घः प्रज्ञापारमिता स्त्रिमयः॥

[स्त्री ही स्वर्ग है, धर्म, तप, बुद्ध, सङ्घ तथा प्रज्ञापारमिता भी स्त्री ही है]

इस प्रकार स्त्रियों का महत्त्व बताते हुए अन्तिम में स्त्री प्रज्ञा से अभिन्न होने से उसी की उपासना पर बल दिया गया है।

अन्तिम में – जब तक आकाश की स्थिति रहती है तब तक यह सिद्धि रहती है, इसी से चण्डरोषण की शक्ति चण्डी सिद्ध होती है।

पटल - ६

इस पटल में किस प्रकार प्रज्ञा और उपाय अवलम्बनपूर्वक उनकी भावना करनी चाहिए यह प्रश्न है। इसके उत्तर में भगवान् कहते हैं -

योगी स्त्रीमग्रतः कृत्वा ह्यन्योन्यदृष्टितत्परः।
ऋजुकायं समादाय ध्यायेदेकाग्रमानसः॥ ६/१

[योगी को हमेशा सिद्धि (ज्ञान) प्राप्ति के लिए शरीर को सीधा करके (रीढ़ को सीधा रखना) स्थिर आसन में बैठकर दोनों दृष्टियों को एक दूसरे पर करना चाहिए। अर्थात् प्रज्ञा और उपाय, स्त्री और पुरुष सामने बैठकर एक दूसरे के दृष्टियों में एक हों - एक दूसरे के आखों में अपनी दृष्टि एकाग्र - अविचलित रूप में डालते रहें]

इस प्रकार उस साधना से जब सिद्धि (ज्ञान)प्राप्त होती है तब निश्चय है विशिष्ट फल प्राप्त होता है -

सर्वज्ञः सर्वगो व्यापी सर्वक्लेशविवर्जितः।
न रोगो न जरा तस्य मृत्युः तस्य न विद्यते॥ ६/१०

[वह सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वदुःखों से हीन हो जाता है। उसको न रोग, न जरा और न ही मृत्यु पीड़ा दे सकते हैं]

इस प्रकार की साधना का फल अत्यन्त विशिष्ट है वह प्राप्तव्य को प्राप्त कर लेता है। सर्वज्ञ या बुद्ध हो जाता है।

यहाँ तीन नाडियों की भी चर्चा की गई है। प्रज्ञा और उपाय के लिए। वे हैं -

ललना प्रज्ञास्वभावेन वामे नाडी व्यवस्थिता।
रसना चोपायरूपेण दक्षिणे समवस्थिता॥
ललना रसनयोमध्ये अवधूती व्यवस्थिता।
अवधूत्यां यदा वायुः शुक्रेण समत्सी कृतः॥ ६/१७-१८

इस प्रकार ध्यान के विषय में अत्यन्त विशिष्ट रीति का वर्णन इस पटल में किया गया है।

पटल - १०

दशवें पटल में विशेष सुख के उपलब्धि से ही बोधि प्राप्ति की बात कही गई है। यहाँ प्रश्न है - किं भगवन्! स्त्रीव्यतिरेकेणापि शक्यते साधयितुम्- अर्थात् हे भगवान् क्या स्त्री के बिना भी चण्डमहारोषण पद की प्राप्ति हो सकती है या नहीं?

इसके उत्तर में भगवान् कहते हैं - यह संभव नहीं है। बिना स्त्री की सिद्धि नहीं हो सकती।

न सुखोदय-मात्रेण लभ्यते बोधिरुत्तमा।
सुख विशेषोदयाद् एव प्राप्यते सा च नान्यथा॥
तच्च कार्य बिना नैव कारणे नैव जायते।
कारणं च स्त्रिया योगो न चान्यो हि कदाचन॥
सर्वासामेव मायानां स्त्रीमायैव प्रशस्यते।
तामेवातिक्रमेद् योऽसौ न सिद्धिं सोऽधि गच्छति॥

१०/१-३

केवल सुख का उदय काफी नहीं है बोधि के लिए किन्तु विशिष्ट अलौकिक सुख से बोधि की उपलब्धि होती है। वह बिना कारण के कदापि संभव नहीं है। उसमें कारण केवल स्त्री के साथ समागम ही है। सभी मायाओं में स्त्रीमाया विशिष्ट एवं प्रशंसित है अतः जो उसे छोड़कर अन्यत्र साधना में लगता है वह सिद्धि न प्राप्तकर सकता।

पटल - ११

भगवान् चण्डमहारोषण से भगवती प्रश्न करती है - किं त्वं भगवन् सरागोऽसि वीतरागो वा?

आप सराग हैं या वीतराग? आपका स्वरूप क्या है, कैसा है?

इस पर भगवान् उत्तर देते हैं -

सर्वोऽहं सर्वव्यापी च सर्वकृत् सर्वनाशकः।
सर्वरूपधरो बुद्धः कर्ता हर्ता प्रभुः सुखी॥
येन येनैव रूपेण सत्त्व यान्ति विनेयताम्।
तेन तेनैव रूपेण स्थितोऽहं लोकहेतवे॥
कवचित् प्रेतः क्वचित् तिर्यक् क्वचिन् नाटक रूपकः॥
११/१-३

मैं सब कुछ हूँ, सर्वव्यापक हूँ, सब कुछ करने वाला हूँ, सर्वनाशक हूँ, सर्वरूपधर्ता हूँ, बुद्ध हूँ, कर्ता, हर्ता, रक्षक तथा सुखी भी हूँ।

जिस जिस रूप में प्राणी भक्ति करते हैं, शिष्य बनते हैं उन्हीं के रूप में लोक कल्याणार्थ परिवर्तित हो जाता हूँ। वही होता हूँ।

कहीं बुद्ध, कहीं सिद्ध, कहीं धर्म और कहीं संघ, कहीं प्रेत कहीं पशु और कहीं कहीं नारकीयों के रूप में भी रहता हूँ। परिवर्तित हो जाता हूँ।

संसार में जो कुछ हैं वह मैं ही हूँ और वह मैं भी सर्वत्र चित्त के रूप में भासित होता हूँ।

इसीलिए यह समग्र स्थावर और जङ्गम उन्हीं से व्याप्त है। यही इस पटल में बताया गया है।

पटल - १२

इस पटल में अनेक मन्त्रों के विभिन्न प्रकार से प्रयोगों का उल्लेख किया गया है।

इन मन्त्रों का प्रयोग - **शान्ति, पौष्टिक, वशीकरण, आकर्षण, मारण, उच्चाटन** के लिए किया जाता है।

इनसे विषनाश, व्याधिनाश, वह्निनाश, खड्ग आदिस्तम्भन, संग्राम में विजय, पाण्डित्य की प्राप्ति, यक्षिणी सिद्धि आदि विषय उपलब्ध होते हैं।

पटल - १३

इस १३वें पटल में योगी को किस व्रत के साथ रहना चाहिए। उसकी चर्या कैसी हो और किस प्रकार वह शीघ्र सिद्धि पा सकता है - यही प्रश्न है। इसके उत्तर में भगवान् कहते हैं -

मारणीया हि वै दुष्टा बुद्धशासन दूषकाः।
तेषामेवधनं गृह्य सत्त्वेभ्योहितमाचरेत्॥ १३/२

बुद्ध शासन के विरोधी-दूषकों को भगाकर उन्हीं की सम्पत्ति लेकर समग्र पाणियों के हित के लिए योगी को लगना चाहिए।

योग की महिमा बताते हुए ग्रन्थकार कहते हैं -

येन येनैव पापेन सत्त्वा गच्छन्त्यधोगतिम्।
तेन तेनैव पापेन योगी शीघ्रं प्रसिद्ध्यति॥ १३/५

जिन-जिन पापकर्मों से प्राणी अधोगति (नरक आदि) को प्राप्त होते हैं उन्हीं के द्वारा योगी सिद्धि को प्राप्त करता है।

इस कथन पर भगवती द्वेषवज्री फिर पूछती है भगवन् यह कैसा विपरीत भाषण (उपदेश) है?

इस पर भगवान् कहते हैं -

रागेण हन्यते रागो वह्निदाहोऽथ वह्निना।
विषेणापि विष हन्यात् उपदेश प्रयोगतः॥ १३/६

राग से राग नष्ट होता है। आग से जले हुए पर आग से ही सेककर उसे शान्त करते हैं। विष का औषध विष ही होता है - उचित रीति से प्रयोग करने पर।

साथ ही समग्र जगत् को निःस्वभाव जानकर मैं सिद्ध हूँ यह भावना करते हुए गोपनीय रूप से समग्र योग का अभ्यास योगी को करना चाहिए, जिससे किसी को कुछ भी साधना-संवर के विषय में ज्ञात न हो।

पटल - १४

इस पटल में समन्तभद्र नामक वज्रयोगी भगवान् से प्रश्न करते हैं - आपको क्यों '**अचल**' कहा है, क्यों 'एकल्लवीर' (एकलवीर) और क्यों **चण्डमहारोषण** कहा है?

इसके उत्तर में भगवान् कहते हैं -

प्रज्ञोपायसमायोगान् निश्चलं सुखरूपिणम्।
प्रज्ञोपायात्मकं तगा विरागेण न चालितम्॥
तेनैवाचलमाख्यातं-----आसंसारं च तिष्ठेत्। १४/१-२

प्रज्ञा और उपाय के योगपूर्वक, सुखपूर्वक, विराग से अचल और संसार रहने तक रहने से भी अचल कहा गया है।

स एवैकल्लवीरस्तु एक एकल्लकः स्मृतः।
विरागमर्दनात् वीरः ख्यात एकल्लवीरकः॥
चण्डः तीव्रतरश्चा सौ समहारोषणः स्मृतः।
रोषणः क्रोधनो ज्ञेयः सर्वमारविमर्दनः॥
विरागः चण्डनामा वै महान् रागादिमारणात्।
रोषणः क्रोधनः तत्र विरागे दुर्दमेरिपौ॥ १४/१०-१२

संसार में अकेले, एकाकी होने से और विराग के मर्दन से '**एकलवीर**' कहे गए हैं।

तीव्र और रोषण पूर्ण होने से सभी मारो के विमर्दन करने से तथा विराग ही चण्ड है उसके मर्दन के कारण ही चण्डमहारोषणं ऐसा नाम हुआ है।

इस प्रकार इस पटल में अचल, एकलवीर और चण्डमहारोषण इन नामों की व्याख्या की गई है।

पटल - १५

इस १५वें पटल में 'एकवीर' की सिद्धि किस प्रकार की जा सकती है यही प्रश्न है। इसके उत्तर में भगवान् कहते है -

आकार के योग से कृष्णाचल की भावना करनी चाहिए और स्थिरतापूर्वक साधना करने से साधक योगी बुद्ध हो जाता है।

भावना बलनिष्पत्तों बोधिराज्यमवाप्नुते। १५/५

भावना बल के निष्पत्ति के द्वारा योगी बोधिराज्य का राजा हो जाता है। अर्थात् तत्काल उसे बोधि उपलब्ध होती है।

इसी प्रकार यहाँ शुद्धि के विषय में भी वर्णन किया है। जिस अन्तर्गत मण्डविशुद्धि, भावनाविशुद्धि आदि अनेक विषय वर्णित हैं।

पटल - १६

इस १६वें पटल में संसार की उत्पत्ति, क्षय और सिद्धि के विषय में प्रश्न किया गया है।

भगवान् ने कहा -

अविद्या से संस्कार
संस्कार से विज्ञान
विज्ञान से नामरूप
नामरूप से षडायतन
षडायतन से स्पर्श
स्पर्श से वेदना
वेदना से तृष्णा
तृष्णा से उपादान
उपादान से भव
भव से जाति

जाति से जरामरण आदि होते हैं।

इस प्रकार द्वादश प्रतीत्यसमुत्पाद का वर्णन यहाँ किया गया है। इसी प्रकार निरोध का वर्णन भी किया गया है।

कारण में आश्रित होकर लोक उत्पन्न और कारण में आश्रित होकर ही निरुद्ध होता है। इन दो अवस्थाओं को जानकर अद्वय की भावना से सिद्धि होती है।

इस प्रकार इस पटल में सघन रूप में प्रतीत्यसमुत्पाद का वर्णन किया गया है।

पटल - १७-१८-१९

इस १७, १८ एवं १९वें पटलों में आयु वृद्धि, रोगनाश तथा सिद्धि के लिए अनेक विध औषधों के प्रयोग का विधान बताया गया है।

यहाँ अनेकविध औषधियों के साथ मन्त्र का जाप और उसके प्रयोग की विधि एवं मन्त्र का भी उपदेश किया गया है। वे पटल निश्चय ही आयुर्वेदीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

पटल - २०-२१

इस २०वें एवं २१वें पटलों में काल का लक्षण, देह का स्वरूप समग्र प्राणायाम की विधि बताई गई है।

देह रक्षा के लिए विशिष्ट बहुत मन्त्रों का उपदेश किया गया है। इनके जप से व्यक्ति अपनी विभिन्न भयों से, दुःखों से रक्षा कर सकता है।

वे मन्त्र भी मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण एवं सर्वसौख्य प्राप्ति, आनन्द प्राप्ति आदि से सम्बन्धित हैं।

इसी प्रकार मन्त्रों के साथ औषधियों की व्यवस्था/व्याख्या भी की गई है। उन औषधियों की सिद्धि की विधि भी यहाँ उपलब्ध है।

पटल - २२-२३

इन दो २२ और २३वें पटलों में भगवान् ने प्राणवायु की अवस्था का वर्णन किया है। जिसके अन्तर्गत पाँच वायु की स्थिति तथा उनके पूर्णता से एवं प्राणायाम से योगी को सिद्धि प्राप्त होने की बात भी कही है।

हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिमण्डले।
उदानः कण्ठदेशे तु व्यानः सर्वशरीरगः॥ २२/१

हृदय में प्राण, गुदा में अपान, नाभि में समान, कण्ठ में उदान तथा व्यान पूरे शरीर में व्याप्त रहता है।

इनमें प्रधान प्राण ही है। वही पाँच अवस्थाओं में परिवर्तित होता है। समग्र प्राणि जगत् श्वास-प्रश्वास में ही टिका हुआ है।

इन प्राण आदि वायुओं की स्थिति को समझ कर निश्चय एवं दृढता पूर्वक योग करने से शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है।

इसी प्रकार मृत्यु के लक्षणों का भी यहाँ उल्लेख किया गया है। योगी इन लक्षणों को जानकर उससे अपने को बचा सके इसीलिए इस मृत्यु लक्षण का भी उपदेश किया गया है।

एवं ज्ञात्वा तद्वञ्चनं परलोकं च चिन्तयेत अर्थात मृत्यु के लक्षणों को जानकर उनको छला जा सके फिर परलोक की चिन्तन भी योगी को करना चाहिए।

पटल - २४-२५

इन दो पटलों में से २४वें पटल में चन्द्र सूर्य के योग (दक्षिण एवं वाम नाडी) पञ्चमहाभूतात्मक शरीर उत्पन्न होने की बात बताई गई है। फिर इस जगत् को मृग मरीचिका के समान बताया गया है।

२५वें पटल में भगवती प्रश्न करती है:-

पूर्वपीठिका

अपरं श्रोतुमिच्छामि प्रज्ञापारमितोदयम्। २५/१

मैं प्रज्ञापारमिता के उदय के विषय में जानना चाहती हूँ। कृपया संक्षेप में आप बतायें। इस प्रश्न के बाद भगवान् ने संक्षेप में प्रज्ञा के विषय में बताते हुए उसके स्वरूप को इस प्रकार व्यक्त किया है:-

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि प्रज्ञापारमितोदयम्।
सत्त्वपर्यङ्किनीं देवीं षोडशाब्दवपुष्मतीम्॥ २५/२

अब, मैं, प्रज्ञापारमिता के उदय के विषय में बताने जा रहा हूँ। वह प्राणियों को ही पर्यङ्क बनाकर दिव्यरूप में विचरण करती है जो १६ वर्षों की अवस्था वाली है।

इस देवी के ध्यान की विधि, उसका पूर्ण स्वरूप मन्त्र आदि का उपदेश करते हैं और इसके प्राप्ति से योगी धन्य हो जाता है यही यहाँ पर दिखाया है।

दिनांक २०१६, ७ मार्च
शिवरात्रि

सम्पादक एवं अनुवादक
काशीनाथ न्यौपाने
नेपाल संस्कृत विश्वविद्यालय, वाल्मीकि क्यैम्पस,
प्रदर्शनी मार्ग, काठमाण्डू नेपाल।
Email: kashinathguru@gmail.com

श्रीचण्डमहारोषणतन्त्रम्

पटलः १

ॐ नमश् चण्डमहारोषणाय॥ एवं मया श्रुतम् एकस्मिन् समये भगवान् वज्रसत्त्वः सर्वतथागतकायवाक्चित्तहृदयवज्राधात्वीश्वरीभगे विजहार। अनेकैश् च वज्रयोगिनीगणैः। तद्यथा। श्वेताचलेन वज्रयोगिना। पीताचलेन च वज्रयोगिना। रक्ताचलेन च वज्रयोगिना। श्यामाचलेन च वज्रयोगिना। मोहवज्रया च वज्रयोगिन्या। पिशुनवज्रया च वज्रयोगिन्या। रागवज्रया च वज्रयोगिन्या। ईर्ष्यावज्रया च वज्रयोगिन्या। एवंप्रमुखैर् योगियोगिनीकोटिनियुतशतसहस्त्रैः॥ १ ॥

ॐ चण्डमहारोषण को नमस्कार है। मैंने ऐसा सुना है किसी एक समय भगवान् वज्रसत्त्व ने सर्वतथागत – काय, वाक्, चित्त, हृदय, वज्रधातु तथा ईश्वरी के भग में विहार किया। अनेक वज्र योगीगण तथा वज्रयोगिनियों के गणों के साथ। जैसा कि श्वेताचल वज्रयोगी के साथ। पीताचल वज्रयोगी के साथ। रक्ताचल वज्रयोगी के साथ। श्यामाचल वज्रयोगी के साथ। मोहवज्री नामक वज्रयोगिनी के साथ। पिशुनवज्री नामक वज्रयोगिनी के साथ। इस प्रकार के प्रमुख वज्रयोगि–योगिनियों के साथ करोड़ों – नियुत – शत सहस्त्र संख्या में अवस्थित वज्रयोगि–योगिनियों के साथ भगवान् वज्रसत्त्व ने विहार किया॥ १ ॥

अथ भगवान् वज्रसत्त्वः कृष्णाचलसमाधि समापद्येदम् उदाजहार।

इसके बाद भगवान् वज्रसत्त्व ने कृष्णाचल नामक समाधि में प्रविष्ट होकर यह उद्गार प्रकट किया।

भावाभावविनिर्मुक्तश् चतुरानन्दैकतत्परः।
निष्प्रपञ्चस्वरूपो ऽहं सर्वसंकल्पवर्जितः॥ २ ॥

भाव-अभाव दोनों से मुक्त, चतुरानन्द में सर्वदा अवस्थित, सभी संकल्पों से रहित तथा निष्प्रपञ्च स्वरूपवाला मैं हूँ॥ २ ॥

मां न जानन्ति ये मूढाः सर्वपुम्बपुषि स्थितम्।
तेषाम् अहं हितार्थाय पञ्चाकारेण संस्थितः॥ ३ ॥

जो मूढ लोग सभी पुरुषों के शरीरों में अवस्थित मुझे नहीं जानते, उनके हित के लिए ही मैं पञ्चाकार के रूप में अवस्थित हूँ॥ ३ ॥

अथ भगवती वज्रधात्वीश्वरी द्वेषवज्रीसमाधिं समापद्येदम् उदाजहार।

अब, इसके बाद वज्रधातु-ईश्वरी ने द्वेष वज्र नामक समाधि में प्रविष्ट होकर यह उदगार प्रकट किया।

शून्यताकरुणाभिन्ना दिव्यकामसुखस्थिता।
सर्वकल्पविहीनाहं निष्प्रपञ्चा निराकुला॥ ४ ॥

शून्यता करुणा से अभिन्न है और वह शून्यता दिव्य कामसुखों में अवस्थित है। मैं सभी विकल्पों से विहीन हूँ और निष्प्रपञ्च एवं निराकुल भी हूँ॥ ४ ॥

मां न जानन्ति या नार्यः सर्वस्त्रीदेहसंस्थिताम्।
तासाम् अहं हितार्थाय पञ्चाकारेण संस्थिता॥ ५ ॥

जो स्त्रियाँ सभी स्त्री शरीरों में अवस्थित मुझे नहीं जानती हैं उनके हित के लिए मैं पञ्चाकार रूप में अवस्थित हूँ॥ ५ ॥

अथ भगवान् कृष्णाचलो गाढेन भगवतीं द्वेषवज्रीञ् चुम्बयित्वा समालिन्य चामन्त्रयते स्म।

अब, भगवान् कृष्णाचल ने द्वेषवज्री को गाढ आलिङ्गन पूर्वक चुम्बन करके यह मन्त्रणा की।

देवि देवि महारम्यं रहस्यं चातिदुर्लभम्।
सारात् सारतरं श्रेष्ठं सर्वबुद्धैः सुभाषितम्॥ ६ ॥
शृणु वक्ष्ये महातन्त्रं तन्त्रराजेश्वरं परम्।
नाम्ना चैकलवीरं तु सत्त्वानाम् आशुसिद्धये॥ ७ ॥

हे देवी, हे देवी, अति दुर्लभ, अत्यन्त रमणीय, परम रहस्य, जो सार

का भी महासार है, अत्यन्त श्रेष्ठ है, साथ ही सभी बुद्धों ने व्यक्त भी किया है, उसे आप सुनो, जो तन्त्रों के राजाओं का भी परम राजा है। वह नाम से एक वीर चण्डरोषण है जो प्राणियों के तत्काल सिद्धि प्राप्त कराने वाला है। मैं आपको बताऊँगा॥ ६-७॥

अप्रकाश्यम् इदं तन्त्रम् अदृष्टमण्डलस्य हि।
नान्यमण्डलप्रविष्टस्य तन्त्रराजं तु दर्शयेत्॥ ८ ॥

अदृष्ट मण्डलों के लिए यह तन्त्र सर्वथा अप्रकाश्य है और अन्यमण्डलों में - मण्डलान्तर में प्रविष्टों के लिए भी इसका प्रकाशन नहीं करना चाहिए॥ ८ ॥

मण्डले चण्डरोषस्य प्रविष्टो यः समाहितः।
श्रद्धायत्रपरश् चण्डे तस्य तन्त्रं तु देशयेत्॥ ९ ॥

चण्डरोषण के मण्डल में जो प्रविष्ट है और वह भी समाधि में यदि अवस्थित है, साथ ही श्रद्धापूर्वक प्रयत्न में लगा हुआ हो - जो चण्डेश्वर में एकाग्र हो - निरन्तर, उसी को इस तन्त्र को उपदेश देना चाहिए॥ ९ ॥

गुरौ भक्तः कृपालुश् च मन्त्रयानपरायनः।
भक्तश् चण्डेश्वरे नित्यं तस्य तन्त्रं प्रदर्शयेत्॥ १० ॥

गुरु का भक्त हो, कृपालु हो। मन्त्रयान में गम्भीरता से लगा हुआ हो। चण्डेश्वर के भक्ति में निरन्तर लगा हो। उसी को इसका उपदेश पूर्वक प्रदर्शन करना चाहिए॥ १० ॥

एवं बुद्ध्वा तु यः कश्चिद् योगी लोभविडम्बितः।
चण्डस्य मण्डलादृष्टे देशयेत् तन्त्रम् उत्तमम्॥ ११ ॥
स महाव्याधिभिर् ग्रस्तो विष्ठामूत्रमलीकृतः।
षणमासाभ्यन्तरे तस्य मृत्युदुःखं भविष्यति॥ १२ ॥

इस प्रकार जानकर, समझकर भी जो योगी उपदेश के लोभ के या अन्य किसी लोभ के वशीभूत होकर अदृष्ट चण्ड मण्डल में इस उत्तम तन्त्र का यदि उपदेश करता है तो निश्चय ही वह मूर्ख बड़े व्याधियों से ग्रस्त होता है तथा विष्ठा मूत्र आदि से मलीन होकर छह महीनों के भीतर ही निश्चय भी मृत्यु को प्राप्त हो जाता है॥ ११-१२॥

यमदूतैस् ततो ग्रस्तः कालपाशवशीकृतः।
नरकं नीयते पापी यदि बुद्धैर् अपि रक्षितः॥ १३ ॥

यमदूतों के द्वारा पकड़ने के बाद कालपाश में बँधकर वह पापी नर को लिवाया जाता है। यदि साक्षात् बुद्ध भी चाहें तो उसकी रक्षा नहीं कर सकते॥ १३ ॥

यदि कर्मक्षयाद् दुःखं भुक्त्वा च लक्षवत्सरं।
मानुष्यं प्राप्यते जन्म तत्र वज्रेण भिद्यते॥ १४ ॥

उसके बाद नरक में उस दुष्कर्म को लाख वर्षों तक भोगने के बाद भी यदि मनुष्य जन्म में आ जाता है तो वहाँ भी वज्र से कट जाता है॥ १४॥

तस्माच् च मण्डलं चारु वर्तयेन् मन्त्रविद्व्रती।
प्रवेश्य तत्र वै शिष्यान् पूर्वम् एव परीक्षितान्॥ १५ ॥

इसीलिए अच्छा मण्डल निर्माण करने के बाद व्रध-नियम में स्थित होकर उस मण्डल में प्रवेश करें फिर शिष्यों को उस मण्डल में प्रवेश कराये जो पहले से ही परीक्षित हों॥ १५ ॥

ततो हि देशयेत् तन्त्रं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्।
अश्रुतं देशयेत् यो ऽपि सो ऽपि गच्छत्य् अधोगतिम्॥ १६॥

उसके बाद तीनों लोकों में सुदुर्लभ तन्त्र की देशना करें। किन्तु अज्ञात तन्त्रों का और अपरीक्षित शिष्यों के उपदेश करने से उपदेशक अधोगति को प्राप्त होता है॥ १६ ॥

मुखपाको भवेत् तस्य यदि बुद्धसमो ऽपि हि।
श्रद्धाहीनो ऽथवा शिष्यः श्रृणुते जिज्ञासनाय च॥ १७ ॥

ऐसे व्यक्ति के मुख में व्रण-घाव हो जाता है। यदि वह बुद्ध के समान भी क्यों न हो वह रोगी होगा ही। यदि उसका शिष्य श्रद्धाहीन एवं केवल जिज्ञासा हेतु ही दीक्षाग्रहण करता हो तो वह भी रोगी होगा॥ १७ ॥

भिद्यते मूर्ध्नि वज्रेण वृष्टिकाले न संशयः।
तथ्यम् एतन् मया देवि भाषितं च वरानने।
तन्त्रे चैकलवीरे ऽस्मिन् सुगुप्ते चण्डरोषणे॥ १८ ॥

उस शिष्य या दीक्षा दाता का वर्षाकाल में मूर्धा का भेदन होगा। यह

तथ्य मैंने आपको बताया है हे सुन्दर मुखवाली योगिनी! इस – एकल वीर नामक तन्त्र में जो चण्डरोषण नाम से प्रसिद्ध एवं सुगुप्त है॥ १८ ॥

इत्य एकल्लवीराख्ये श्रीचण्डमहारोषणतन्त्रे तन्त्रावतारणपटलः प्रथमः॥

इस प्रकार एकलवीर नाम श्रीचण्डमहारोषण तन्त्र में तन्त्रावतार नामक
प्रथम पटल पूर्ण हुआ।

पटलः २

अथ भगवती द्वेषवज्री भगवन्तं चण्डमहारोषणं गाढम् आलि-ङ्ग्याह।

अब, भगवती द्वेष वज्री ने भगवान् चण्डमहारोषण को गाढ आलिङ्गन में बँधकर कहा।

मण्डलस्य कियन् मानं वर्तनीयञ् च केन हि।
लिखितव्यञ् च तथा तत्र मध्ये किं ब्रूहि मे प्रभो॥ १ ॥

मण्डल का परिमाण कितना होना चाहिए। किस प्रकार उसे निर्माण किस पदार्थ होना चाहिए। उस मण्डल के बीच में, हे प्रभो! क्या लिखना चाहिए॥ १ ॥

अथ भगवान् आह।

अब, भगवान ने कहा।

मण्डलस्य भवेन् मानं चैकहस्तं द्विहस्तकम्।
त्रिहस्तं वा चतुःपञ्च पञ्चमानं न चाधिकम्॥ २ ॥

मण्डल का परिमाण एक हाथ, दो हाथ, तीन हाथ होना चाहिए। इसी प्रकार चार हाथ या पाँच हाथ होने चाहिए। किन्तु उससे अधिक उसका परिमाण नहीं होना चाहिए॥ २ ॥

यस्य तस्यैव चूर्णेन नानावर्णकृतेन च।
चतुरश्रञ् चतुर्द्वारं चतुस्तोरणाभूषितम्॥ ३ ॥

अनेक वर्णों से युक्त जिस किसी के चूर्ण से चारों ओर चार द्वार बनाना चाहिए तथा चार प्रकार के तोरणों से उसे सजाना चाहिए॥ ३ ॥

भागेन चाष्टमेनैव द्वारं तस्य प्रकल्पयेत्।
द्वारमानेन निर्यूहं तदर्धेन कपोलकम्॥ ४ ॥

उस मण्डल का आठ भाग करके उस आठवें भाग को द्वार की कल्पना करनी चाहिए। उस द्वार के आधे भाग का गवाक्ष बनाना चाहिए॥ ४॥

पक्षं चापि तथा वेदीहारार्धहारपट्टिकाम्।
मूलसूत्रबहिस् तस्यास् तु अर्धेनैव रजोभुवम्॥ ५ ॥
वज्रावलीं तु तेनैव अष्टस्तम्भांश् च कल्पयेत्।
द्वारात् त्रिगुणितं कुर्यात् द्वारतोरणम् उत्तमम्॥ ६॥

वेदी के एक स्थान को हार और अच्छे वस्त्रों से सुशोभित करना चाहिए, तथा मूल स्थान से बाहर माला के आधे भाग से धूल लगे हुए वेदी में वज्रावली का निर्माण करना चाहिए। साथ ही आठ खम्बे होने चाहिए। उक्त द्वार से तीन गुने बड़े द्वारतोरण का निर्माण करना चाहिए॥ ५-६॥

विश्ववज्रम् अधो लिख्यं वज्रप्राकारवेष्टितम्।
कल्पवृक्षादिभिर् युक्तं चण्डरोषणमण्डलम्॥ ७ ॥

उस मण्डल के अधोभाग में वज्र के दिवार से वेष्टित किया हुआ, विश्ववज्र को लिखने के बाद फिर कल्पवृक्ष आदि से संयुक्त चण्डरोषण मण्डल को लिखा जाना चाहिए॥ ७ ॥

पुटम् एकं च कर्तव्यं चक्रवत् परिमण्डलम्।
तस्य पूर्वादिके विश्वपद्मं अष्टौ समालिखेत्॥ ८ ॥

एक दोना भी बनाना चाहिए जो चक्र के तरह परिमण्डलयुक्त हो उसके पूर्व दक्षिण आदि दिशाओं में विश्वपद्म का चिह्न लिखने चाहिए जो संख्या में आठ होते हैं॥ ८ ॥

नवमं मध्यमे तस्य मध्ये खड्गं सुनीलकम्।
वज्रेणाङ्कितं तं च वज्रकर्त्तिकपालयुतम्॥ ९ ॥
पूर्वे चक्राङ्कितं खड्गं श्वेतवर्ण समालिखेत्।
दक्षिणे पीतवर्णं तु युतं रत्नेन संलिखेत्॥ १० ॥

उस मण्डल के मध्य में नवाँ पद्म का चिह्न बनायें और उसमें नील रंग का वज्र से अंकित वज्र खड्ग जो कपाल से युक्त हो बनाना चाहिए। पूर्व

दिशा में वहीं पर चक्र से अंकित सफेद वर्ण का खड्ग का चिह्न बनाना चाहिए और दक्षिण की ओर पीलावर्ण का चिह्न बनाकर उस पर रत्नों का चिह्न भी बनावें॥ ६-१०॥

पश्चिमे रक्तवर्णं तु रक्तपद्मेन चिह्नितम्।
उत्तरे खड्गमात्रं तु श्यामवर्णं समालिखेत्॥ ११ ॥

पश्चिम दिशा में रक्त वर्ण का खड्ग होना चाहिए जो रक्त पद्म से चिह्नित हो और उत्तर में केवल खड्ग का चिह्न हो जो श्याम (काला) वर्ण का होना चाहिए॥ ११ ॥

चक्रेण चिह्नितं कर्त्तिं अग्निकोणे सितां लिखेत्।
नैरृते पीतवर्णां तु लिखेद् रक्तसुचिह्नितम्॥ १२ ॥

चक्र से चिह्नित खड्ग को आग्नेय कोण में सफेद रंग से लिख देना चाहिए। नैग त्य कोण में अच्छे रत्नों से चिह्नित खड्ग जो पीत वर्ण का होना चाहिए॥ १२॥

वायव्ये च तथा रक्तां रक्तपद्मसुचिह्निताम्।
ऐशाने श्यामवर्णां तु नीलोत्पलसमन्विताम्॥ १३ ॥

वायव्य कोण में रक्त वर्ण का खड्ग बनाना चाहिए जो रक्त पद्म से चिह्नित होना चाहिए और ईशान दिशा में श्याम वर्ण का हो जो नील कमल से समन्वित होना चाहिए॥ १३ ॥

चन्द्रसूर्योपरिस्थं तु सर्वचिह्नं प्रकल्पयेत्।
रजोमण्डलम् इदं प्रोक्तं मया लोकार्थसाधने॥ १४ ॥

चन्द्र और सूर्य का चिह्न बनाकर उनके ऊपर सभी चिह्नों की कल्पना करनी चाहिए। यही रजो मण्डल है जिसे मैंने लोक कल्याण के लिए कल्पित किया है॥ १४ ॥

अथवा मण्डलं कुर्यात् पटरूपेण सुलिखितम्।
पूर्ववत् मण्डलं लिख्यं मध्ये कृष्णाचलं लिखेत्॥ १५ ॥

अथवा वस्त्रों में ऐसा मण्डल बनायें जो अत्यन्त सुन्दर हो, मण्डल पहले के तरह ही हो और बीच में कृष्णाचल का चित्र बनाना चाहिए॥ १५ ॥

सम्पुटं द्वेषवज्र्या वै पूर्वे श्वेताचलं लिखेत्।
तथा पीताचलं सव्ये पृष्ठे रक्ताचलं लिखेत्॥ १६ ॥

सम्पुट रीति से द्वेष वज्र का चित्र श्वेत वर्ण का पूर्व दिशा में होना चाहिए, साथ ही पीतवर्ण का सव्य दिशा में अचल (चित्र) हो और पृष्ठ भाग में रक्ताचल बनाना चाहिए॥ १६ ॥

लिखेद् उत्तरे श्यामाचलं वह्नौ मोहवज्रीं।
श्वेतां नैरृते पीतां पिशुनवज्रीं समालिखेत्॥ १७ ॥

उत्तर दिशा में श्यामाचल को लिखकर वहीं पर वह्नि जलती हुई हो और उस पर मोहवज्री का चित्र बनाये जो श्वेतवर्ण की हो तथा नैग त्य में पीले वर्ण का पिशुनवज्री का चित्र बनाना चाहिए॥ १७ ॥

वायव्ये लोहितां देवीं रागवज्रीं समालिखेत्।
ऐशाने ईर्ष्यावज्रीं श्यामां लिखेद् वै पटमण्डलम्॥ १८ ॥

वायव्य दिशा में रक्तवर्ण की देवी रागवज्री को लिखना चाहिए और ईशान दिशा में ईर्ष्या वज्री का चित्र बनायें जो श्याम वर्ण का हो। वे सब पट-मण्डल (कपड़ा) होना चाहिए॥ १८ ॥

अथ मण्डलाधिष्ठानमन्त्रं भवति।

अब मण्डलाधिष्ठान मन्त्र का वर्णन करते हैं।

ॐ श्रीचण्डमहारोषण सर्वपरिवारसहित आगच्छ आगच्छ जः हूं वं होः अत्र मण्डले अधिष्ठानं कुरु हूं फट् स्वाहा॥

ॐ हे श्री चण्डमहारोषण! सभी परिवार सहित आइए, आइए, जः हूँ होः इस मण्डल में अधिष्ठित हो जाइए कुरु हूँ फट् स्वाहा।

अनेनाकृष्य प्रवेश्य बद्ध्वा वशीकृत्य पूजयेत्॥ २० ॥

इस मन्त्र के द्वारा आकृष्ट करके बन्धन में रखकर वशीकार के बाद पूजा करें॥ २० ॥

अथ पूजामन्त्रं भवति।

अब पूजामन्त्र बताते हैं।

ॐ कृष्णाचल पुष्पं प्रतीच्छ हूं फट्।

ॐ कृष्णाचल पुष्प को ग्रहण करें हूँ फट्।

ॐ श्वेताचल पुष्पं प्रतीच्छ हूं फट्।

ॐ श्वेताचल पुष्प को ग्रहण करें हूँ फट्।

ॐ पीताचल पुष्पं प्रतीच्छ हूं फट्।

ॐ पीताचल पुष्प को ग्रहण करें हूं फट्।

ॐ रक्ताचल पुष्पं प्रतीच्छ हूं फट्।

ॐ रक्ताचल पुष्प को ग्रहण करें हूं फट्।

ॐ श्यामाचल पुष्पं प्रतीच्छ हूं फट्॥ २१ ॥

ॐ श्यामाचल पुष्प को ग्रहण करें हूं फट्॥ २१ ॥

ॐ द्वेषवज्रि पुष्पं प्रतीच्छ हूं फट्।

ॐ द्वेषवज्रि को पुष्प का अर्पण करता हूँ हूँ फट्

ॐ मोहवज्रि पुष्पं प्रतीच्छ हूं फट्।

ॐ मोहवज्रि को पुष्प का अर्पण करता हूँ, हूँ फट्।

ॐ पिशुनवज्रि पुष्पं प्रतीच्छ हूं फट्।

ॐ पिशुनवज्रि को पुष्प का अर्पण करता हूँ, हूँ फट्।

ॐ रागवज्रि पुष्पं प्रतीच्छ हूं फट्।

ॐ रागवज्रि को पुष्प का अर्पण करता हूँ, हूं फट्।

ॐ ईर्ष्यावज्रि पुष्पं प्रतीच्छ हूं फट्॥ २२ ॥

ॐ ईर्ष्यावज्रि को पुष्प का अर्पण करता हूँ, हूँ फट्॥ २२ ॥

पुष्पं दीपं तथा धूपं गन्धं नैवेद्यम् एव च।
पूजां पञ्चोपहारेण कुर्याद् वै मण्डलस्य हि॥ २३ ॥

पुष्प, दीप, धूप, गन्ध, नैवेद्य के साथ पञ्चोपचार के द्वारा मण्डल की पूजा करनी चाहिए॥ २३ ॥

यदा श्वेताचलो मध्ये मोहवज्र्या समन्वितः।
तस्यैव मण्डलं ज्ञेयम् एवं पीताचलादिके॥ २४ ॥

जब श्वेताचल मोहवज्री के साथ समन्वित होता है उसी का मण्डल जानना चाहिए अन्य पीताचल आदि में भी। अर्थात् श्वेताचल के तरह ही पीताचल आदि भी होंगे॥ २४ ॥

पञ्चयोगिप्रभेदेन पञ्चमण्डलकल्पनम्।
कुर्याद् एकाग्रचित्तेन पूर्वसेवाकृतश्रमः॥ २५ ॥

पञ्च योगियों के भेद से पञ्च मण्डलों की कल्पना की गई है। एकाग्रचित्त होकर पूर्व सेवा के तरह ही श्रमपूर्वक सेवा की जानी चाहिए॥ २५ ॥

मण्डलं परिवेष्टचैव योगिनीं योगिसम्पुटाम्।
भोजयेन् मद्यमांसैश् च वन्दयेच् च मुहुर् मुहुः॥ २६ ॥

मण्डल का परिवेष्टन करके योगिनी का परिवेष्टन करके जो योगी के साथ सम्पुटित हो, उसे अब, मद्यमांस का भोजन करायें तथा बारम्बार उसका वन्दन करें॥ २६ ॥

इत्य् एकल्लवीराख्ये श्रीचण्डमहारोषणतन्त्रे मण्डलपटलो द्वितीयः॥

इस प्रकार एकलवीर – श्रीचण्डमहारोषण तन्त्र में मण्डल नामक
दूसरा पटल पूर्ण हुआ।

पटलः ३

अथ भगवत्य् आह।

अब भगवती कहती है।

कथं शिष्यो भवेत् भव्यो योजितव्यो ऽत्र तन्त्रके।
निर्विशङ्कश् च कर्तव्यः कथय त्वं महाप्रभो॥ १ ॥

कैसे शिष्य भव्य (बहुत अच्छा) होता है? उस तन्त्र में किस प्रकार उसको लगाना चाहिए। उसे कैसे निर्विशङ्क (शङ्का हित) करना चाहिए? हे प्रभो आप बतायें॥ १ ॥

अथ भगवान् आह।

अब भगवान् कहते हैं।

आदौ त्रिशरणं दद्यात् पञ्चशिक्षाश् च पोषधम्।
ततः पञ्चाभिषेकं तु गुह्यं प्रज्ञां च शेषतः॥ २ ॥

सबसे पहले त्रिशरण गमन कराना चाहिए। उसके बाद पोषण युक्त पञ्च शिक्षा का दान करना चाहिए। उस कृत्य के अनन्तर पञ्च-अभिषेक दे देना चाहिए, जो अत्यन्त गुह्य है तथा प्रज्ञा का दान भी करना चाहिए॥ २ ॥

ततो भव्यो भवेच् छिष्यस् तन्त्रं तस्यैव देशयेत्।
दूरतो वर्जयेद् अन्यम् अन्यथा रौरवं व्रजेत्॥ ३ ॥

जो शिष्य भव्य (होनहार) हो उसे ही तन्त्र की देशना करनी चाहिए। अन्य अभव्य शिष्यों को दूर से ही छोड़ देना चाहिए अन्यथा गुरु रौरव नामक नरक जाता है॥ ३ ॥

तत्रेयं त्रिशरणगाथा।

उस अवसर के लिए यह त्रिशरणगाथा है।

बुद्धं गच्छामि शरणं यावद् आबोधिमण्डतः।
धर्मं गच्छामि शरणं सङ्घं चावेत्यश्रद्धया॥ ४ ॥

मैं बुद्ध का शरणागत होता हूँ। बोधिमण्डप पर्यन्त तथा धर्म के शरण में जाता हूँ साथ ही सङ्घ का भी शरणागत होता हूँ, अतिशय श्रद्धा के साथ ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से॥ ४ ॥

तत्रेयं पञ्चशिक्षागाथा।

यहाँ यह पञ्च शिक्षा गाथा है।

मारणं चौरिकां चापि परपत्नीं मृषावचः।
त्यजामि सर्पवत् सर्वं पञ्चमं मद्यं एव च॥ ५ ॥

मारण (हिंसा), चौर्य, परपत्नी, झूठ वचन, और मद्य वे सब सर्प के तरह ही त्याग करता हूँ॥ ५ ॥

तत्रेयं पोषधगाथा।

यहाँ यह पोषध गाथा है।

न सत्त्वं घातयिष्यामि न हरिष्ये परस्वकं।
ब्रह्मचर्यं चरिष्यामि वर्जयिष्ये मृषावचः॥ ६ ॥

प्राणी की हिंसा नहीं करुंगा। दूसरों की सम्पत्ति का हरण नहीं करुंगा। ब्रह्मचर्य का पालन करुंगा। झूठ वचन (असत्य) नहीं बोलुंगा॥ ६ ॥

प्रमदायातनं मद्यं न पास्यामि कदाचन।
नृत्यगीतविभूषाञ् च वर्जयिष्यामि सोत्सवाम्॥ ७ ॥

वाराङ्गनाओं तथा मद्य का सेवन नहीं करुंगा, कभी भी, नृत्य, गीत से विभूषित उत्सवों को सदा त्याग करुंगा॥ ७ ॥

उगौः शय्यां महाशय्यां विकाले ऽपि च भोजनम्।
एवं पोषधम् अष्टाङ्गम् अर्हताम् अनुशिक्षया॥ ८ ॥

उगा शैया, महाशैया, अकाल में भोजन, पोषण, अष्टाङ्ग अर्हता को छोड़ुंगा, अनुशिक्षा के कारण ही मैं पालन करुंगा॥ ८ ॥

विशुद्धं धारयिष्यामि यथा बुद्धेन देशितं।
तेन जित्वा शठमारं प्राप्य बुद्धत्वम् उत्तमम्॥ ९ ॥

जीवन की शुद्धता को धारण करुंगा, जैसा कि बुद्ध ने उपदेश दिया है। उसके कारण शठों को मारों (काम) को जित कर उत्तम बुद्धत्व को प्राप्त करुंगा॥ ९ ॥

भवेयं भवखिन्नानां शरणं सर्वदेहिनाम्।
संसरामि भवे यावत् तावत् सुगतजः पुमान्।
भवेयं साधुसंसर्गी धीमान् लोकहिते रतः॥ १० ॥

संसार से दु:खित प्राणियों का मैं शरण होऊ। जब तक संसार में मैं होऊ (जन्म लेता हूँ) तब तक सुगत से समुत्पन्न पुमान् (पुरुष) होऊँ तथा साधु संसर्गी हो पाऊँ लो कहित में रह होऊ साथ ही धीमान् भी हो सकुँ॥ १०॥

तत्रायम् उदकाभिषेकः।

यहाँ यह उदकाभिषेक बता रहे हैं।

शिष्यं शुद्धं स्फटिकसंकाशं निर्मलं ध्यात्वा विजयकलशाद् उदकम् आकृष्य सहकारपल्लवेन ॐ आः सर्वतथागताभिषेकसमयश्रिये हूं इत्य् अनेनाभिषिञ्चेत्॥ ११ ॥

शुद्ध, स्फटिक के तरह निर्मल शिष्य का ध्यान करके विजय कलश से जल लेकर उसे आकृष्ट करके सहकार के पत्तों से ॐ आः --------- इत्यादि मन्त्र से शिष्य का अभिषेक करें॥ ११ ॥

तत्रायं मकुटाभिषेकः।

यहाँ मुकुटाभिषेक बता रहे हैं।

वस्त्रादिघटितं मकुटं सर्वरत्नम् इवाकलय्य शिष्यं चक्रवर्तिनम् इव ध्यात्वा तच्छिरसि मकुटं दत्त्वा पूर्ववद् अभिषिञ्चयेत्। ॐ चण्डमहारोषण आविश आविश अस्य हृदये हूं फट्॥ १२ ॥

वस्त्र आदि से घटित (बना हुआ) मुकुट को जो सभी रत्नों से निर्मित के तरह समझ कर शिष्य को चक्रवर्ती रूप में ध्यानकर उसके शिर में मुकुट पहना दे, उसके बाद पहले के तरह ही उसे अभिषिञ्चित करें। ॐ चण्डमहारोषण इस शिष्य के हृदय में प्रविष्ट हो। हूँ फट्। इस मन्त्र के द्वारा अभिषेक करें। ॥ १२ ॥

तत्रायं खड्गाभिषेकः।

यहाँ यह खड्गाभिषेक बता रहे हैं।

लोहादिमयं खड्गं तस्य दक्षिणहस्ते दत्त्वा पूर्ववद् अभिषिञ्चयेत्। ॐ हन हन मारय मारय सर्वशत्रूञ् ज्ञानखड्ग हूं फट्॥ १३ ॥

लोहा आदि से निर्मित खड्ग उसके दक्षिण हाथ में देकर पहले के तरह ही उसका अभिषेक करें। ॐ हन-हन मारय मारय सर्वशत्रून् ज्ञान खड्ग हूँ फट्। इस मन्त्र से अभिषेक करें॥ १३ ॥

तत्रायं पाशाभिषेकः।

यहाँ यह पाशाभिषेक है।

ताम्रादिमयं पाशम् तस्य तर्जनीयुते वामहस्ते दत्त्वा पूर्ववद् अभिषिञ्चेत्। ॐ गृह्ण गृह्ण कट्ट कट्ट सर्वदुष्टान् पाशेन बन्ध बन्ध महासत्य ते धर्म ते स्वाहा॥ १४ ॥

ताम्र आदि से बने हुए पाश (रज्जु) को उसके तर्जनीयुक्त वामहस्त में देकर पहले के तरह ही उसका अभिषेक करें। ॐ गृहण गृहण कट्ट कट्ट सर्वदुष्टान् परशेन बन्ध बन्ध महासत्य ते धर्म स्वाहा (यह अभिषेक मन्त्र है)॥ १४ ॥

तत्रायं नामाभिषेकः।

यह, यहाँ नामाभिषेक है।

शिष्यं चण्डमहारोषणमुद्रयोपवेश्य तदाकारेण च तम् आलम्ब्य। ॐ हे श्रीभगवन् कृष्णाचल सिद्धस् त्वं हूं फट्। ततः पूर्ववद् अभिषिञ्चेत्।

एवं साधकस्य कृष्णादिवर्डभेदेन पञ्चाचलनाम्राभिषेको देयः। इति पञ्चाभिषेकः॥ १५ ॥

शिष्य को चण्डमहारोषण मुद्रा में बिठाकर उसी के आकार में उसे पकड़कर ऊँ हे श्री भगवन्! कृष्णाचल! सिद्धस त्वं हूँ फट् + इस मन्त्र को पढ़कर पहले के तरह उस शिष्य का अभिषेक करें। इस प्रकार साधक का कृष्ण आदि वर्ण के भेद से पञ्च चल नाम से अभिषेक करना चाहिए। यही पञ्चाभिषेक है॥ १५ ॥

स्त्रीणां तु मकुटाभिषेकं त्यक्त्वा सिन्दूराभिषेकं दद्यात्। पटु महादेवीरूपां शिष्याम् आलम्ब्य। ऊँ भगवति आविश आविश अस्या हृदये हूं फट्। लौहादिकर्त्तिकान् तस्या दक्षिणहस्ते दद्यात्। ऊँ कर्त्तिके सर्वमाराणां मांसं कर्तय कर्तय हूं फट्। वामहस्ते नृकपालं दार्वादिकृतं दद्यात्॥ ऊँ कपाल सर्वशत्रूणां रक्तं धारय धारय हूं फट्। ततो भगवतीमुद्रयोपवेश्य तदाकारेण चालम्ब्य। ऊँ हे श्रीद्वेषवज्रि सिद्धा त्वं हूं फट्। एवं स्त्रियः कृष्णादिवर्णभेदेन पञ्चयोगिनीनां नाम्राभिषिञ्चेत्। आसां तु प्रज्ञाभिषेकस्थाने उपायाभिषेको देय इति॥ १६ ॥

स्त्रियों को मुकुटाभिषेक न देकर उन्हें सिन्दुराभिषेक देना चाहिए। तीव्र - महादेवी रूप शिष्य को आलम्बन करें। उसके लिए मन्त्र है ऊँ भगवति! आविश आविश अस्या हृदये हूँ फट्। लौह आदि द्वारा निर्मित खड्ग उसके दक्षिण हाथ में दे देना चाहिए। उसके लिए मन्त्र है - ऊँ कर्त्तिके सर्वमाराणां मांसां कर्तय कर्तय हूँ फट्। वामहस्त में नृकपाल को दारु (लकड़ी) आदि से समन्वित करके देना चाहिए। उसके लिए मन्त्र है - ऊँ कपाल सर्व शत्रूणां रक्तं धारय धारय हूँ फट्। उसके बाद भगवती मुद्रा से शिष्य को बिठाकर उसके आकार से उसका आलम्बन करें। उसके लिए मन्त्र है - ऊँ हे श्री द्वेषवज्रि! सिद्धात्वं हूँ फट्। इस प्रकार स्त्रियों को कृष्ण आदि वर्ण भेद से पञ्च योगिनियों के नामपूर्वक उसका अभिषेक करें। उनका प्रज्ञाभिषेक स्थान में उपायाभिषेक (करना) देना चाहिए॥ १६ ॥

अथ गुह्याभिषेको भवति।

अब गुह्याभिषेक के विषय में बताते हैं।

शिष्यो गुरुं वस्त्रादिभिः सम्पूज्य तस्मै स्वमनोवाञ्छितां रूपयौवनमण्डितां निर्यातयेत्।

इयं निर्यातिता तुभ्यं सर्वकामसुखप्रदा।
मया कामसुखार्थं ते गृह्ण नाथ कृपं कुरु॥ १७ ॥

शिष्य गुरु को वस्त्र आदि से पूजकर उसे अपने मन के इच्छानुरूप रूपयौवन मण्डित कन्या का दान करें। यह कन्या, जो सभी प्रकार के कामसुखों को देने वाली है मैं आपके कामसुख के लिए देता हूँ। कृपा आप हे नाथ! ग्रहण करें॥ १७ ॥

ततो गुरुं नमस्कृत्य शिष्यो बहिर् निर्गच्छेत्। ॐ चण्डमहारोषण हूं फट् इति मन्त्रं जपन् तिष्ठेत्। गुरुः पुनर् मद्यमांसादिभिर् आत्मानं पूजयित्वा, प्रज्ञां च संतर्प्य, सम्पुटीभूय, तदुद्भूतं शुक्रशोणितं पर्णपुटादाव् अवस्थाप्य, शिष्यम् आहूय, तस्य जिह्वायाम् अनामिकाङ्गुष्ठाभ्यां द्रव्यं गृहीत्वा, हूं फट् कारं लिखेत्। ततो ऽहो सुखम् इति पाठयेच् च। तत एवं वदेत्। अद्याहं तेन बुद्धज्ञानम् उत्पादयामि येनातीतानागता प्रत्युत्पन्ना बुद्धा भगवन्तो ऽप्रतिष्ठितनिर्वाणं प्राप्ताः। किं तु न त्वयेदम् अदृष्टमण्डलपुरतो वक्तव्यम्। अथ वदसि तदा। तस्य शिष्यस्य हृदये खड्गं अर्पयित्वेदं पठेत्॥ १८ ॥

उसके बाद गुरु को नमस्कार करके शिष्य उस मण्डल से बाहर चला जाय। ॐ चण्डमहारोषण हूँ फट् – यह मन्त्र जपते हुए (वहीं) रहे। गुरु फिर मद्य मांस आदि से अपनी पूजा करके प्रज्ञा का सन्तर्पण करके सम्पुटित होकर उससे उत्पन्न शुक्र शोषित को पत्ते के दाने में रखकर शिष्य को बुलाकर उसके जीभ पर अनामिका और अंगुष्ठ अंगुलियों से उस पदार्थ को लेकर हूँ फट् यह लिखें। उसके बाद अहो सुख है ऐसा भी बुलावे। उसके बाद ऐसा बोले। आज मैं उस बुद्ध ज्ञान को उत्पन्न करुंगा जिससे अतीत-अनागत – प्रत्युत्पन्न बुद्ध भगवान् गण अप्रतिष्ठित निर्वाण को प्राप्त हुए। परन्तु यह अद्वेय हैं ऐसा अदृष्ट-मण्डल के समक्ष नहीं बोलना चाहिए। यदि बोलते हैं तो उस शिष्य के हृदय में खड्ग अर्पण करके ऐसा पढ़ना चाहिए॥ १८ ॥

अतितीक्ष्णो ह्य् अयं खड्गश् चण्डरोषकरे स्थितः।
भेदयेत् समयं यस् तु तस्य छेदनतत्परः॥ १९ ॥

यह खड्ग अति तीक्ष्ण है जो भगवान् चण्डरोष के हाथ में अवस्थित है। जो इस सिद्धान्त का भेदन करता है उसके छेदन में सर्वथा तत्पर रहता है॥१९ ॥

जन्मकोटिससहस्त्रेषु खड्गव्यग्रकरा नराः।
सर्वाङ्गच्छेदका भोन्ति शिरश्छेदैकतत्पराः॥ २० ॥

कोटि-कोटि जन्मों में खड्गों को अपने हाथपर रखकर अत्यन्त व्यग्रता से प्रतीक्षा करने वाले नर सर्वाङ्ग का छेदन करने में समर्थ होते हैं जो शिर छेदन के लिए तत्पर हैं॥ २० ॥

भविष्यति तवाप्य् एवं समयं यदि भेत्स्यसि।
ततः शिष्येण वक्तव्यम् एवम् अस्तु इति॥ २१ ॥

तुम्हारी भी यही स्थिति होगी यदि इस (समय) सिद्धान्त का भेदन करोगे उस अवसर पर शिष्य को ऐसा बोलना चाहिए कि हे गुरो! ऐसा हो॥२१॥

ततो ऽन्धपट्टं बन्धयित्वा मण्डले पुष्पं पातयेत्। ततो ऽन्धपट्टं मुक्त्वा मण्डलं प्रदर्शयेत्। यस्य यच् चिह्नं तद् बोधयेत्। ततस् ताम् एव प्रज्ञां शिष्यस्य समर्पयेत्॥ २२ ॥

इसके बाद शिष्य के आँखों में अन्धपट्टि बाँधकर मण्डल में पुष्प गिराये। उसके बाद वह काली पट्टी खोलकर उस शिष्य को मण्डल में प्रवेश कराये। उसका जो चिह्न है उसे उसको दिखाये। अब उसी प्रज्ञा रूपी स्त्री का शिष्य को समर्पित कर दे॥ २२ ॥

इयं ते धारणी रम्या सेव्या बुद्धैः प्रकाशिता।
अतिक्रामति यो मूढः सिद्धिस् तस्य न चोत्तमा॥ २३ ॥

यह तुम्हारी धारणी है तुम्हे इसकी सेवा करनी चाहिए, जिसे सभी बुद्धों ने प्रकाशित किया है। जो मूढ इसका अतिक्रमण करता है वह उत्तम सिद्धि नहीं पा सकता है॥ २३ ॥

ततो गुरुः कर्णे कथयेत् चतुरानन्दविभागम्। ततो बहिर् निर्गच्छेद् गुरुः। प्रज्ञा तु नग्रीभूयोत्कुटकेन गुह्यं तर्जन्या दर्शयति॥ २४ ॥

उसके बाद गुरु उस शिष्य के कानों में चतुरानन्द के विभागपूर्वक

उसके स्वरूप को बता दें। फिर गुरु वहाँ से बाहर निकल जाय। अब वह प्रज्ञा स्त्री अपनी उत्कट तर्जनी से गह्य को उस शिष्य को दिखाती है॥ २४ ॥

किं त्वं उत्सहसे वत्स मदीयाशुचिभक्षणम्।
विण्मूत्रं चैव रक्तं च भगस्यान्तः प्रचूषणम्॥ २५ ॥

[और कहती है-] क्या, वत्स! तुम मेरे अशुचिभषक के लिए उत्साहित हो? विष्टा, मूत्र और रक्त जो मेरे भग के भीतर जमा हुआ है॥ २५ ॥

[उस अवसर पर]

साधकेन वक्तव्यम्।

साधक को कहना चाहिए।

किं चाहं नोत्सहे मातस् त्वदीयाशुचिभक्षणम्।
कार्या भक्तिर् मया स्त्रीणां यावद् आबोधिमण्डतः॥ २६॥

क्या मैं उत्साहित नहीं होऊँगा? हे माता! आपके अशुचि के भक्षण के लिए। मुझे स्त्रियों की भक्ति करनी चाहिए जब तक बोधि (ज्ञान) की उत्पत्ति नहीं होती॥२६ ॥

सा चाह।

फिर वह कहती है।

अहो मदीयं यं पद्मं सर्वसुखसमन्वितम्।
सेवयेद् यो विधानेन तस्याहं सिद्धिदायिनी॥ २७ ॥

अहो! आश्चर्य है। मेरे इस पद्म को, जो सर्वसुखों को देने वाली है, जो विधिपूर्वक सेवन करता है उसे मैं सिद्धि प्रदान करती हूँ॥ २७ ॥

कुरु पद्मे यथाकार्यम् धैर्यं धैर्यप्रयोगतः।
स्वयं चण्डमहारोषः स्थितो ह्य् अत्र महासुखम्॥ २८ ॥

पद्म में जो कृत्य करणीय है उसे धैर्य का प्रयोग करते हुए उस धैर्य को तुम करो क्योंकि स्वयं ही भगवान् चण्डमहारोषण महासुखासन में यहाँ बैठे हुए हैं॥ २८ ॥

ततः साधक आत्मानं चण्डमहारोषणाकारेण ध्यात्वा प्रज्ञां च द्वेषवज्रीरूपेण सम्पुटं कृत्वा चतुरानन्दान् लक्षयेत्। ततो निष्पन्ने गुरुं प्रमुखं कृत्वा मद्यमांसादिभिर् गणचक्रं कुर्यात्। इति प्रज्ञाभिषेकः॥ २९॥

उसके बाद साधक अपने आपको चण्डमहारोषण के आकार में (अभिनिविष्ट कर उसे) ध्यान करके प्रज्ञा को द्वेषवज्री के रूप में ध्यान कर (समझ कर) चतुरानन्द को लक्षित करें। उसके निष्पन्न होने पर गुरु को आगे करके मद्य मांस आदि से गणचक्र का निर्माण करें। यही प्रज्ञाभिषेक है॥ २६॥

इत्य् एकल्लवीराख्ये श्रीचण्डमहारोषणतन्त्रे ऽभिषेकपटलस् तृतीयः॥

इस प्रकार एकल वीरा – श्रीचण्डमहारोषण तन्त्र में
तृतीय अभिषेक पटल पूर्ण हुआ।

पटलः ४

अथ भगवत्य् आह।

भगवती पूछती है।

भावितव्यं कथं चण्डरोषणभावकेन हि।
जप्तव्यं कीदृशं मन्त्रं वद त्वं परमेश्वर॥ १ ॥

भगवान् चण्ड महारोषण के साधक को कैसा होना चाहिए।

उसे किस प्रकार के मन्त्र का जाप करना चाहिए। हे परमेश्वर आप बतायें॥ १ ॥

अथ भगवान् आह।

इसके बाद भगवान् कहते हैं।

मनो ऽनुकूलके देशे सर्वोपद्रववर्जिते।
आसनं कल्पयेत् तत्र यथालब्धं समाहितः॥ २ ॥
प्रथमं भावयेन् मैत्रीं द्वितीये करुणां विभावयेत्।
तृतीये भावयेन् मुदिताम् उपेक्षां सर्वशेषतः॥ ३ ॥

सभी उपद्रवों से रहित, मनोनुकूल–रमणीय स्थान में (एकान्त) आसन की व्यवस्था करनी चाहिए। वहीं पर समाधिस्थ होकर सबसे पहले मैत्री (– समस्त संसार को मित्र के तरह मानना) की भावना फिर करुणा की भावना और उसके बाद मुदिता (हर्ष भाव) की भावना करनी चाहिए। अन्ततः उपेक्षा (पक्ष विपक्ष रहित) का भाव मन में लाना चाहिए॥ २–३॥

ततो हृदि भावयेद् बीजं पद्मचन्द्ररविष्ठितम्।
रश्मिभिः पुरतो ध्यायान् निष्पन्नं चण्डरोषणम्॥ ४ ॥

उसके बाद हृदय में पद्म, चन्द्र और सूर्ययुक्त बीज का ध्यान करें, जिसमें बीज मन्त्र का समावेश हो तथा रश्मियों से समन्वित हो तथा जो चण्डरोष समायुक्त शक्ति से निष्पन्न हुआ हो॥ ४ ॥

पूजयेन् मनसा तं च पुष्पधूपादिभिर् बुधः।
तदग्रे देशयेत् पापं सर्वपुण्यं प्रमोदयेत्॥ ५ ॥

अब विद्वान को उस चण्ड महारोषण की पूजा करनी चाहिए – पुष्प, धूप, दीप आदि से और उनके समक्ष पाप की देशना करके अपने पुण्य को बढ़ाना चाहिए॥ ५ ॥

त्रिशरणं गमनं कुर्याद् याचनाध्येषणाम् अपि।
आत्मानं च ततो दत्त्वा पुण्यं च परिणामयेत्॥ ६ ॥

उसके बाद त्रिशरण गमन कराना चाहिए। अब, याचना एवं अध्येषणा करके अपने आपको उनके समक्ष पूर्णरूप से समर्पित कर दे। इस प्रकार पुण्य का वर्धन करना चाहिए॥ ६ ॥

प्रणिधानं ततः कृत्वा बोधौ चित्तं तु नामयेत्।
नमस्कारं ततः कुर्यात् रश्मिभिः संहरेत् पुनः॥
पठित्वा मन्त्रम् एतद् धि शून्यताध्यानम् आचरेत्॥ ७ ॥

इसके बाद प्रणिधान (नमस्कार-स्तुति) - सङ्कल्प पूर्वक अपने चित्त को बोधि में प्रतिष्ठित करना चाहिए। फिर नमस्कार के बाद अपने आप को रश्मियों के साथ सम्पर्कित-युक्त करते हुए इस निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण करते हुए उन रश्मियों के संहार के बाद शून्यता का ध्यान करें॥ ७॥

ॐ शून्यताज्ञानवज्रस्वभावात्मको ऽहम्॥
ॐ शून्यताज्ञानवज्रस्वभावात्मको ऽहम्।
चिन्तयेद् रश्मिभिर् दग्धं स हूंकारं प्रयत्नतः।
कर्पूरदाहवद् ध्यात्वा रश्मिं चापि न कल्पयेत्॥ ८ ॥

रश्मियों से वह दग्ध है इस प्रकार यत्नपूर्वक कर्पूर के दाह के तरह बाहर हूँ कार का ध्यान करें और रश्मियों की कल्पना न करें॥ ८ ॥

सर्वम् आकाशसंकाशं क्षणमात्रं विभाव्य च।
शुद्धस्फटिकवत् स्वच्छम् आत्मदेहं विभावयेत्॥ ६ ॥

सब कुछ आकाश के तरह, शुद्ध स्फटिक के तरह, स्वच्छ, क्षणमात्र के लिए अपने देह का ध्यान करें॥ ६ ॥

अग्रतो भावयेत् पश्चात् यं रं वं लं चतुष्टयम्।
निष्पन्नं भावयेत् तेन वातवह्निजलोर्विकाम्॥ १० ॥

अब इस कृत्य के बाद यं, रं, वं, लं चतुष्ट का ध्यान करें। इन चार वर्णों के द्वारा निष्पन्न वायु, वह्नि, जल और पृथिवी के किरणों का ध्यान करें॥ १० ॥

भ्रुंकारं च ततो ध्यात्वा कूटागारं प्रकल्पयेत्।
चतुरस्त्रं चतुर्द्वारं अष्टस्तम्भोपशोभितम्॥ ११ ॥

अब भ्रुं कार का ध्यान करके कूटागार की कल्पना करनी चाहिए। वह कूटागार चार द्वार तथा आठ खम्बों से युक्त होना चाहिए॥ ११ ॥

ध्यायेत् तन्मध्यके पद्मं विश्वं अष्टदलान्वितम्।
पंकारबीजसम्भूतं तत्र अंकारजं विधुम॥ १२ ॥

उस कूटागार के बीच में विश्व–पद्म का ध्यान करना चाहिए जो अष्ट दलों से युक्त पद्म है। उसके ऊपर (बीच भाग) में पं कार से संयुक्त अं कार से समुत्पन्न चन्द्र का ध्यान करें॥ १२ ॥

रविं रंकारजातं च तदूर्ध्वं हूंकृतिं पुनः।
तज्जम् अक्षोभ्यकं ध्यायान् मामक्या सह सम्पुटम्॥ १३ ॥

सूर्य रंकार से समुत्पन्न हैं। उसके ऊपर हूँ कार का ध्यान करें। उससे समुत्पन्न अक्षोभ्या का ध्यान करें जो मामकी के साथ सम्पुटित हैं॥ १३ ॥

संक्रमेत् तत्र योगीन्द्रस् तस्य मूर्धबिलेन च।
तारासंक्रान्तियोगेन मामकीभगचेतसा॥ १४ ॥
ततः शुक्ररसीभूतः पतेत् तस्या भगोदरे।
निष्पन्नं चण्डरूपं तु निःसरेच् च भगात् ततः॥ १५ ॥

योगीयों में श्रेष्ठ साधक को उस अवस्था में मूर्धबिल नामक संक्रान्ति योग से, मामकी के भग में चित्त को लगाकर संक्रमणित होते हुए वहाँ पर

शुक्ररस से एकीभूत होकर उस मामकी के भगोदर में गिरना चाहिए। उसके बाद वहाँ चण्डमहारोषण का स्वरूप निष्पन्न होने के बाद ही उस मामकी के भग से बाहर निकलना चाहिए॥ १५ ॥

हन्यात् खड्गेन चाक्षोभ्यं पितरं पश्चात् प्रभक्षयेत्।
मामक्यापि ततस् तं च भक्षितं वै प्रकल्पयेत्॥ १६ ॥

अब खड्ग से पितारूप अक्षोभ्य का हनन की कल्पनात्मक भावना के बाद उसके भक्षण की भावना करें। मामकी के द्वारा भी उस अक्षम्य के भक्षण की कल्पना करें॥ १६॥

ततो हि मामकीं गृह्य मातरं सम्प्रकामयेत्।
तयाचालिङ्गितं ध्यायेद् द्वेषवज्रीस्वरूपतः॥ १७ ॥

उसके बाद मामकी की भावना कर माता की कल्पना करें। द्वेषवज्री के रूप से और उसके द्वारा आलिङ्गन की भावना करें॥ १७ ॥

खड्गोग्रकरं सव्ये वामे पाशसमन्वितम्।
तर्जन्या तर्जयन्तं च दंष्ट्रोष्ठं तु निपीदितम्॥ १८ ॥
सम्प्रहारपदं सव्ये चतुर्मारविमर्दनं।
वामे भूमिष्ठजानुं च केकराक्षं भयानकम्॥ १९ ॥
वसुधां तर्जयन्तं च वामजान्वग्रतः स्थितम्।
अक्षोभ्यकृतमौलं तु नीलं रत्नकिरीटिनं॥ २० ॥
पञ्चचीरं कुमारं च सर्वालङ्कारभूषितम्।
द्विराष्टवर्षाकारं च रक्तचक्षुर्द्वयं विभुम्॥ २१ ॥
भावयेत् स्थिरचित्तेन सिद्धो ऽहं चण्डरोषणः।
ततो मन्थानयोगेन पूर्वे श्वेताचलं सृजेत्॥ २२ ॥

उग्र खड्ग को सव्य हाथ में पाश से समन्वित कर तर्जनी से डाँटते हुए दारों से होठों को पीड़ित कर बायीं ओर एक पैर से चार मारों का विमर्दन करके भूमि में वाम घुटने को रखकर भयानक ककराक्ष को, जो पृथिवी को ही तर्जित करते हुए तथा उस घुटने के अग्रभाग में अक्षोभ्य के शिर को, जो रत्नों से भरा हुआ मुकुट से सुशोभित और नीलवर्ण का मुकुट तथा पाँच चीर (बुद्ध) कुमार को, जो सभी अलङ्कारों से विभूषित हो तथा १६ वर्ष के

समापन, लाल लाल दो आँखों से युक्त, चण्डमहारोषण का की भावना करते हुए मैं स्वयं ही चण्डमहारोष हूँ इस भाव से स्थिर चित्त होकर मन्थान योग द्वारा पूर्व की ओर श्वेताचल की सृष्टि करें॥ १८-२२॥

मोहवज्रीं सृजेद् अग्रौ शरत्पुण्ड्र समप्रभाम्।
पीताचलं सृजेत् सव्ये पिशुनवज्रीं च नैरृते॥ २३ ॥

अग्नि में, शरतकालीन पद्म के तरह मोह वज्री की सृष्टि करें। पीताचल की सृष्टि वाम भाग में तथा नैग त्य भाग में पिशुन वज्री की भावना करें॥ २३॥

रक्ताचलं सृजेत् पृष्ठे रक्तां च रागवज्रिकाम्।
वायव्ये चोत्तरे श्यामाचलं श्यामां ईशानके॥ २४ ॥

पीछे की ओर रक्ताचल की सृष्टि करें और वहीं पर रागवज्री नामक योगिनी, जो लाल वर्ण की हो, की भी सृष्टि करें। वायव्य और उत्तर में श्यामाचल एवं ईशान में श्यामा की सृष्टि करें॥ २४ ॥

ईर्ष्यावज्रीं सृजेत् पश्चात् स प्रज्ञोद्गतिम् आवहेत्।
चोदयन्ति ततो देव्यः स्वकण्ठोदितगीतिभिः॥ २५ ॥

पीछे की ओर ईर्ष्यावज्री की सृष्टि करें, उसके बाद प्रज्ञा के गति का आवाहन करें। उसके बाद वे देवियाँ अपने कण्ठ के गीतों से प्रेरित करती हैं॥ २५ ॥

पहु मैती तु विवर्जिअ होहि मा शुन्नसहाव।
तोज्जु वियोए फिटुमि सर्वे सर्वे हि ताव च॥ २६ ॥

मुझे सब लोग देखें, मुझे छोड़कर सब कुछ शून्य ही शून्य है। यदि मेरे पास आप सब आयेंगे सभी सभी में होंगे। मैं सब में और सब मेरे में होंगे॥ २६ ॥

मोहवज्र्याः।

यह मोह वज्री का गायन है।

मा करुणाचिअ इट्टहि पहु मा होहि तु शुन्न।
मा मोज्जु देह सुदुक्खिअ होइ है जीव विहुन॥ २७ ॥

मेरे पास करुणा ही करुणा है। उस करुणा के अतिरिक्त शून्य ही शून्य है। सारा संसार के देहधारी दुःखी हैं। इस करुणा के बिना सब कुछ

शून्य के बराबर है॥ २७ ॥

पिशुनवज्रयाः।

· यह पिशुन वज्री का गीत है।

की सन्तु हरसि विहोहिअ शुन्नहि करसि पवेश।
तोज्जु निमन्तण करिअ मनुअ च्छै लोहाशेष॥ २८ ॥

इस जगत् में क्या है? विरह ही विरह है। अतएव इसे शून्य समझना चाहिए। जब तक मन है तब तक दुःख शेष है। शून्यता को बोध नहीं है। अतः शून्यता के भावना से मन से मुक्त होवें॥ २८ ॥

रागवज्रयाः।

यह राग वज्री का गीत है।

योवनवुण्त्तिम् उपेखिअ निष्फल शुन्नए दित्ति।
शुन्नसहाव विगोइअ करहि तु मेअ सम घिट्टि॥ २९ ॥

यौवन-धन सम्पत्ति के कारण शून्य तत्त्व उपेक्षित हो गया है। इसीलिए समझदारी पूर्वक शून्य के साथ एकाकार हो और सत्काय दृष्टि को दूर कर दुःख से मुक्त होना ही चाहिए॥ २९ ॥

ईर्ष्यावज्र्याः।

यह ईर्ष्यावज्री का गीत है।

स्वप्नेनेव इदं श्रुत्वा द्रवाज् झटिति उत्थितः।
पूर्वकेनैव रूपेण ध्यायात् तं सम्पुटात्मकम्॥ ३० ॥

स्वप्न के तरह ही इसे सुनकर तत्काल इससे उठकर पूर्वरूप के अनुसार सम्पुटात्मक रूप से उसका ध्यान करें॥ ३० ॥

ततः श्वेताचलं हत्वा मोहवज्रीं प्रकामयेत्।
रूपं श्वेताचलं कृत्वा पुनः पीताचलं हरेत्॥ ३१ ॥

उसके बाद श्वेताचल का हनन करके मोहवज्री की कामना करें। श्वेताचल रूप का निर्माण करके फिर पीताचल का ग्रहण करें॥ ३१ ॥

कामयेत् पिशुनवज्रीं तु कृत्वा पीताचलत्मकम्।
हत्वा रक्ताचलं तद्वत् कामयेद् रागवज्रिकाम्॥ ३२ ॥

पिशुनवज्री की कामना करने के बाद पीताचल का आहरणपूर्वक

रक्ताचल का भी ग्रहण करें और राग-वर्जिका की कामना करें॥ ३२ ॥

कृत्वा रक्ताचलात्मकं हन्याच् छ्यामाचलं पुनः।
ईर्ष्यावज्रीं ततः काम्य कृत्वा श्यामाचलात्मकम्॥ ३३ ॥

रक्ताचल का निर्माण करके फिर श्यामाचल का हनन करने के बाद ईर्ष्या वज्री की कामना करें। फिर श्यामाचल का ग्रहण करें॥ ३३ ॥

अनुराग्य चतुर्देवीं संहरेत् सर्वमण्डलम्।
सम्पुटं चैकम् आत्मानं भावयेन् निर्भरं यती।
अहंकारं ततः कुर्यात् सिद्धो ऽहं नैव संशयः॥ ३४ ॥

अनुराग पूर्वक समग्र देवियों एवं मण्डलों का संहार करें साथ ही अपने को उसके साथ एकाकार करके यती स्वयं स्वी भावना करें। उसके बाद अहङ्कार मैं हूँ ऐसी स्थिति की उत्पत्ति होती है अर्थात् मैं सिद्ध हो गया हूँ इसमें सन्देह नहीं है॥ ३४ ॥

कृष्णवर्णो हि यो योगी स कृष्णाचलभावकः।
श्वेतगौरो हि यो योगी स श्वेताचलभावकः।
पीतवर्णो हि यो योगी स पीताचलभावकः।
रक्तगौरो हि यो योगी स रक्ताचलभावकः।
श्यामवर्णो हि यो योगी स श्यामाचलभावकः॥ ३५ ॥

जो योगी कृष्णवर्ण का है उसे कृष्णाचल की भावना करनी चाहिए। जो योगी श्वेत वर्ण का है वह श्वेताचल भावक कहा जाता है। पीतवर्ण का जो योगी है उसे पीताचल की भावना करनी चाहिए। रक्त और गौर वर्ण के योगी को रक्ताचल की भावना करनी चाहिए। श्यामवर्ण का जो योगी है उसे श्यामाचल की भावना करनी चाहिए॥ ३५ ॥

कृष्णवर्णा तु या नारी द्वेषवज्रीं विभावयेत्।
श्वेतगौरा तु या नारी मोहवज्रीं विभावयेत्॥ ३६ ॥

कृष्णवर्ण की जो नारी है उसे द्वेषवज्री की भावना करनी चाहिए। श्वेत गौरा जो नारी है उसे मोहवज्री की भावना करनी चाहिए॥ ३६ ॥

पीतवर्णा तु या नारी पिशुनवज्रीं विभावयेत्।
रक्तगौरा तु या नारी रागवज्रीं विभावयेत्॥ ३७ ॥

पीत वर्ण की नारी को पिशुनवज्री की भावना करनी चाहिए। रक्त गौरा नारी को रागवज्री की भावना करनी चाहिए॥३७ ॥

श्यामवर्णा तु या नारी ईर्ष्यावज्रीं विभावयेत्।
वज्रयागी नरः सर्वो नारी तु वज्रयोगिनी॥ ३८ ॥

श्यामवर्ण की नारी को ईर्ष्या वज्री की भावना करनी चाहिए। सभी नर वज्र योगी हैं तथा सभी नारियाँ वज्र योगिनियाँ हैं॥ ३८ ॥

कृष्णादिवर्णभेदेन सर्वम् एतत् प्रकल्पयेत्।
अथवा कर्मभेदेन पञ्चभेदप्रकल्पनम्॥ ३९ ॥

कृष्ण आदि वर्णों के भेदों से यह सब कुछ कल्पना करनी चाहिए। अथवा कर्म भेद से ही पाँच प्रकार की कल्पनायें करनी चाहिए॥ ३९ ॥

कृष्णो हि मारणे द्वेषे श्वेतः शान्तौ मताव् अपि।
पीतः स्तम्भने पुष्टौ वश्याकृष्टे तु लोहितः॥४० ॥

मारण कृत्य में कृष्ण, द्वेष में भी कृत्य तथा शान्ति में श्वेत, स्तम्भन में पीत, वश्य एवं आकर्षण में रक्तवर्ण होने चाहिए॥ ४० ॥

श्याम उच्चाटने ख्यातो यद् वा जातिप्रभेदतः।
कृष्णो डोम्बः शितो विप्रः पीतश् चाण्डालको मतः॥ ४१ ॥

उच्चाटन में श्यामवर्ण का प्रयोग तथा अथवा जाति के भेद से भी वर्ण भेद होते हैं। कृष्णवर्ण डोम के लिए, सफेद ब्राह्मण के लिए, चाण्डाल के लिए पीला वर्ण कहा गया है॥ ४१ ॥

रक्तस् तु नटकः श्यामः स्मृतो रजक इत्य अपि।
कृष्णकन्यां विशालाक्षीं कामयेत् कृष्णभावकः॥ ४२ ॥

रक्तवर्ण नट के लिए, श्याम घोबी के लिए है। कृष्णाचल के भाव से विशालाक्षी कृष्णकन्या की भावना = कामना करें॥ ४२ ॥

शितकन्यां शितात्मा तु पीतकन्यां सुपीतकः।
रक्तो हि रक्तकन्यां तु श्यामकन्यां तु श्यामकः॥ ४३ ॥

श्वेत कन्या को गौरवर्ण पुरुष भावित करें। पीला-वर्ण वाला पीतवर्ण की कन्या की कामना करें। रक्तवर्ण व्यक्ति रक्तवर्णा की भावना - कामना करें। श्याम कन्या की भावना श्याम पुरुष करें॥ ४३ ॥

यां ताम् अथवा गुह्य यत्तदा भावनापरः।
कामयेत् स्थिरचित्तेन यथा को ऽपि न बुध्यते॥ ४४ ॥

जिस किसी भी वर्ण की कन्या क्यों न हो। उसकी भावना स्थिर चित्त से कामना वाला व्यक्ति करें, जिसे अन्य व्यक्ति समझ न पावे॥ ४४ ॥

एताः सुसिद्धिदाः कन्याः पक्षमात्रप्रयोगतः।
आसां शुक्रं भवेद् वज्रं जिह्वया सर्वम् आलिखेत्॥ ४५ ॥

वे सब सुसिद्धि को देने वाली कन्यायें हैं। एक पक्ष (१५ दिन) के भावना से ही वे सिद्ध हो जाती हैं तथा इनका शुक्र वज्र के तरह ही हो जाता है। और उसे जिह्वा के द्वारा लिखना चाहिए॥ ४५ ॥

यावदिच्छं पिबेत् मूत्रं तासाम् अर्प्य भगे मुखम्।
गुदपद्मे चार्प्य वै विष्ठां यावदिच्छं प्रभक्षयेत्॥ ४६ ॥

जितनी इच्छा हो उतनी ही इनके मूत्रों का पान करें। अपने मुखों को उनके भगों में लगाकर ही पान करें। गुद पद्म में मुख रखकर जितनी इच्छा हो उतनी विष्ठा का भक्षण करें॥ ४६ ॥

न कर्तव्या घृणाल्पापि सिद्धिभ्रंशो ऽन्यथा भवेत्।
निजाहारम् इदं श्रेष्ठं सर्वबुद्धैः प्रभक्षितम्॥ ४७ ॥

इसमें थोड़ा सा भी घृणा का भाव न हो। अन्यथा तत्काल सिद्धि से वह योगी भ्रष्ट हो जाता है। यह योगियों का अपना आहार है जिसे सभी बुद्धों ने भक्षण किया है॥ ४७ ॥

इत्य् एकल्लवीराख्ये श्रीचण्डमहारोषणतन्त्रे देवतापटलश् चतुर्थः॥

इस प्रकार एकलवीर नामक चण्डमहारोषण तन्त्र में
चतुर्थ देवता पटल पूर्ण हुआ।

पटलः ५

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि सर्वमन्त्रसमुच्चयम्।

अब मैं सभी मन्त्रों के समुच्चय को बताने जा रहा हूँ।

अथ भगवान् सर्वमारपराजयं नाम समाधिं समापद्येदं मन्त्रसमुच्चयम् आह।

इसके बाद भगवान् चण्ड महारोषण ने सर्वमार पराजय नामक समाधि में प्रविष्ट होकर इस मन्त्र समूह को कहा है।

ॐ चण्डमहारोषण हूं फट्। मूलमन्त्रः॥

ॐ चण्डमहारोषण हूँ फट् - यह मूलमन्त्र है।

ॐ अचल हूं फट्। द्वितीयमूलमन्त्रः॥

ॐ अचल हूँ फट् - यह द्वितीय मूलमन्त्र है।

ॐ हूं फट्। तृतीयमूलमन्त्रः॥

ॐ हूँ फट् - यह तृतीय मूलमन्त्र है।

हूं। हृदयमन्त्रः॥

हूँ - यह हृदय मन्त्र है।

आं। हृदयमन्त्रो द्वितीयः॥

आं - दूसरा हृदय मन्त्र है।

हं। तृतीयहृदयमन्त्रः॥ १ ॥

हं - तृतीय हृदय मन्त्र है॥ १ ॥

ॐ ह्रां ह्रीं चण्डरूपे चट चट प्रचट प्रचट कट्ट कट्ट प्रस्फुर प्रस्फारय प्रस्फारय हन हन ग्रस ग्रस बन्ध बन्ध जम्भय जम्भय स्तम्भय मोहय मोहय सर्वशत्रूणां मुखबन्धनं कुरु कुरु सर्वडाकिनीनां ग्रहभूतपिशाचव्याधियक्षानां त्रासय त्रासय मर मर मारय मारय

रुरुचण्डरुक् रक्ष रक्ष देवदत्तं चण्डमहासेनः सर्वम् आज्ञापयति। ॐ चण्डमहारोषण हूं फट्। मालामन्त्रः॥ २ ॥

नमः सर्वाशापरिपूरकेभ्यः सर्वतथागतेभ्यः। सर्वथाचलकानना नट्ट नट्ट मोट्ट मोट्ट सट्ट सट्ट तुट्ट तुट्ट तिष्ठ तिष्ठ आविश आविश आः महामत्तबालक धूण धूण तिण तिण खाद खाद विघ्रान् मारय मारय दुष्टान् भक्ष भक्ष देवदत्तं कुरु कुरु किरि किरि महाविष वज्र हूं हूं हूं। त्रिवलित रङ्गागर्तक हूं हूं हूं। अचल चेट फट् स्फाटय स्फाटय हूं हूं असमन्तिक त्राट् महाबल साटय समानय त्रां मां हां शुद्ध्यन्तु लोकाः। तुष्यतु वज्री। नमो ऽस्त्व् अप्रतिहतबलेभ्यः। ज्वालय त्राट् असह नमः स्वाहा। द्वितीयमालामन्त्रः॥ ३ ॥

नमः सर्वाशापरिपूरकेभ्यः सर्वतथागतेभ्यः सर्वथा त्राट् अमोघ-चण्डमहारोषण स्फाटय स्फाटय हूं भ्रमय भ्रमय हूं त्राट् हां मां। तृतीयो मालामन्त्रः॥

नमः सर्वाशापरिपूरकेभ्यः सर्वतथागतेभ्यः सर्वथा त्राट् अमोघ-चण्डमहारोषण स्फाटय स्फाटय हूं भ्रमय भ्रमय हूं त्राट् हां माम्। यह तृतीय माला मन्त्र है।

इति पञ्चाचलानां सामान्यमन्त्राः॥ ४ ॥

वे पञ्च अचलों के सामान्य मन्त्र हैं॥ ४ ॥

विशेषमन्त्रास् तु।

विशेष मन्त्र तो निम्न हैं।

ॐ कृष्णाचल हूं फट्॥

ॐ श्वेताचल हूं फट्॥

ॐ पीताचल हूं फट्॥

ॐ रक्ताचल हूं फट्॥

ॐ श्यामाचल हूं फट्॥ ५ ॥

वे पञ्चाचलों के विशेष मन्त्र है॥ ५ ॥

देवीनां तु सामान्यमन्त्राः।

देवियों के सामान्य मन्त्र निम्न हैं।

ॐ वज्रयोगिनि हूं फट्। मूलमन्त्रः॥ –

यह मूलमन्त्र है।

ॐ प्रज्ञापारमिते हूं फट्। द्वितीयमूलमन्त्रः॥–

यह दूसरा मूलमन्त्र है।

ॐ वौहेरि हूं फट्। तृतीयमूलमन्त्रः॥ ६ ॥ –

यह तीसरा मूलमन्त्र है॥ ६ ॥

ॐ पिचु पिचु प्रज्ञावर्धनि ज्वल ज्वल मेधावर्धनि धिरि धिरि बुद्धिवर्धनि स्वाहा। मालामन्त्रः॥ ७ ॥ – यह मालामन्त्र है॥ ७ ॥

विशेषमन्त्रास् तु।

विशेष मन्त्र वे निम्न हैं।

ॐ द्वेषवज्रि हूं फट्॥

ॐ मोहवज्रि हूं फट्॥

ॐ पिशुनवज्रि हूं फट्॥

ॐ रागवज्रि हूं फट्॥

ॐ ईर्ष्यावज्रि हूं फट्॥ ८ ॥

देवियों के वे विशेष मन्त्र हैं॥ ८ ॥

बलिमन्त्रः सामान्यो ऽयम्।

यह निम्न सामान्य बलिमन्त्र है।

ॐ नमो भगवते श्री चण्डमहारोषणाय देवासुरमानुष्यत्रासनाय समस्तमारबलविनाशनाय रत्नमकुटकृतशिरसे इमं बलिं गृह्ण गृह्ण मम सर्वविघ्नान् हन हन चतुर्मारान् निवारय निवारय त्रास त्रास भ्राम भ्राम छिन्द छिन्द भिन्द भिन्द नाश नाश ताप ताप शोष शोष छेद छेद भेद भेद दुष्टसत्त्वान् मम विरुद्धचित्तकान् भस्मीकुरु भस्मीकुरु फट् फट् स्वाहा॥ ९ ॥

यह सामान्य बलि के लिए मन्त्र है॥ ९ ॥

इत्य एकल्लवीराख्ये श्रीचण्डमहारोषणतन्त्रे मन्त्रपटलः पञ्चमः॥

इस प्रकार एकलवीर नामक चण्डमहारोषण तन्त्र में

पाँचवाँ मन्त्र पटल पूर्ण हुआ।

पटलः ६

अथ भगवती प्रज्ञापारमिता भगवन्तं गाढम् आलिङ्ग्य पद्मेन वज्रघर्षणं कृत्वा प्राह।

भगवती प्रज्ञापारमिता ने भगवान् चण्डमहारोषण को गाढ आलिङ्गन में बाँधकर पद्म के द्वारा वज्रघर्षण (सुरति क्रिया) करने के बाद कहा है।

निष्पन्नक्रमयोगेन भावना कीदृशी भवेत्।
योगिनीनां हितार्थाय पृच्छितं सफलीकुरु॥ १ ॥

हे भगवन्! निष्पन्न क्रमयोग से किस प्रकार की भावना करनी चाहिए। योगिनियों के हित के लिए ही यह मैं आप से पूछ रही हूँ मेरे प्रश्न का उत्तर कृपया आप बतायें॥ १ ॥

अथ भगवान् आह।

अब भगवान् चण्डमहारोषण ने कहा।

निष्पन्नक्रमयोगस्थो योगी योगैकतत्परः।
भावयेद् एकचित्तेन मम रूपम् अहर्निशम्॥ २ ॥

निष्पन्न क्रम में स्थिर रहकर केवल योग में ही लगकर योगी को एक चित्त रूप में अहर्निश मेरे ही स्वरूप का ध्यान करना चाहिए॥ २ ॥

कल्पयेत् स्वस्त्रियम् तावत् तव रूपेण निर्भरम्।
गाढेनैवातियोगेन यथैव स्फुटतां व्रजेत्॥ ३ ॥

अपने स्त्री के ही रूप में आप की (प्रज्ञापारमिता) कल्पना करनी चाहिए। वह आपका रूप प्रष्ट होना चाहिए तथा गाढ आलिङ्गन में स्फुटतया बाँध कर भावना करनी चाहिए॥ ३ ॥

मातरं दुहितरं चापि भगिनीं भागिनेयिकाम्।
अन्यां च ज्ञातिनीं सर्वां डोम्बिनी ब्राह्मनीं तथा॥ ४ ॥
चण्डालीं नटकीं चैव रजकीं रूपजीविकां।
व्रतिनीं योगिनीं चैव तथा कापालिनीं पुनः॥ ५ ॥
अन्यां वा यथाप्राप्तां स्त्रीरूपेण सुसंस्थितां।
सेवयेत् सुविधानेन यथा भेदो न जायते॥ ६ ॥
भेदे तु कुपितश् चण्डरोषणो हन्ति साधकं।
अवीचौ पातयेत् तं च खड्गपाशेन भीषयन्॥ ७ ॥
नेह लोके भवेत् सिद्धिः परलोके तथैव च।
तस्माच् च गुप्तम् अत्यन्तं कर्तव्यं नापि गोचरम्॥ ८ ॥
डाकिनीमन्त्रवद् गोप्यं चण्डरोषणसाधनं।
अत्यन्तकामिनाम् अर्थे मया बुद्धेन भाषितम्॥ ९ ॥

माता, अपनी पुत्री, बहन, भाञ्जी, अन्य-कुटुम्ब स्त्रियाँ, सभी डोम्बिनी तथा ब्राह्मणी, इसी प्रकार चण्डाली, नटकी, रजकी, वाराङ्गनायें, व्रतिनी, योगिनी, कापालिनी अथवा जो भी स्त्री के रूप में अवस्थित हो उसकी सेवा करनी चाहिए। सेवा इस प्रकार विधान से हो की उसमें कोई भेद न हो सके - विधि में, यदि भेद उत्पन्न होगा तो भगवान् चण्डमहारोषण कुपित होंगे और साधक का हनन करेंगे तथा खड्ग और पाशों से डरवाकर अवीच नरक में गिरायेंगे। इस लोक में सिद्धि नहीं होगी परलोक में भी सिद्धि संभव नहीं होगा। अतः इसे अत्यन्त गोपनीयता के साथ साधना करनी चाहिए। कोई भी इसे न देख सके। डाकिनी के मन्त्रों के तरह ही इसे अत्यन्त गोपनीय ही रखना चाहिए। यह अत्यन्त इच्छा शक्ति सम्पन्न योगियों के लिए ही मैंने कहा है - जो बुद्धों ने उपदेश दिया था॥ ४-९॥

मनो ऽनुकुलके देशे सर्वोपद्रववर्जिते।
प्रच्छन्ने तां समादाय स्वचेतोरम्यकामिनीम्॥ १० ॥
बुद्धो ऽहं चाचलः सिद्धः प्रज्ञापारमिता प्रिया।
भावयेत् स्वस्वरूपेण गाढेन चेतसा सुधिः॥ ११ ॥

मनोनुकूल स्थान विशेष में, उपद्रवरहित देश में, एकान्त स्थान में उस

स्त्री को लेकर जो चित्त को प्रसन्नता देनेवाली है, मैं अचलः सिद्ध बुद्ध हूँ। यह मेरी सङ्गिनी प्रेयसी प्रज्ञापारमिता है इस प्रकार की भावना पूर्वक गाढ आलिङ्गन में उसे बाँधकर साधना करनी चाहिए - विद्वान् को॥ १०-११॥

निर्जनं चाश्रमं कृत्वा यथालब्धान्नवस्तुकः।
भावयेन् निर्भरं द्वाभ्यां अन्योन्यद्वन्द्वयोगतः॥ १२ ॥

निर्जन प्रदेश में आश्रम का निर्माण कर जो जैसा अन्न आदि उपलब्ध हो उसे खाकर एक दूसरे में निर्भर होकर एक-दूसरे में ही रहकर साधना करनी चाहिए॥ १२ ॥

स्त्रियं प्रत्यक्षतः कृत्वा संमुखीं चोपवेश्य हि।
द्वाभ्याम् अन्योन्यरागेण गाढम् अन्योन्यम् ईक्षयेत्॥ १३ ॥

स्त्री को प्रत्यक्ष रूप में सामने बिठाकर एक दूसरे में गाढ अनुरागपूर्वक गाढरूप में एक दूसरे को देखें॥ १३ ॥

ततो दृष्टिसुखं ध्यायंस् तिष्ठेद् एकाग्रमानसः।
तथा तत्रैव वक्तव्यं सुखोत्तेजः करं वचः॥ १४ ॥

इस प्रकार दृष्टिसुख का अनुभव करते हुए एकाग्र होकर रहने के साथ ही उस स्त्री को यह कहना चाहिए, जो सुखकारक किन्तु उत्तेजक वचन हो॥ १४ ॥

त्वं मे पुत्रो ऽसि भर्तासि त्वं मे भ्राता पिता मतः।
तवाहं जननी भार्या भगिनी भागिनेयिका॥ १५ ॥

तुम मेरे पुत्र हो, मेरे पति हो, मेरे भाई हो, मेरे पिता भी हो। तुम्हारी मैं जननी हूँ, तुम्हारी पत्नी हूँ, बहन हूँ भाञ्जी हूँ आदि॥ १५ ॥

सप्तभिः पुरुषैर् दासस् त्वं मे खेटास चेटकः।
त्वं मे कपर्दकक्रीतस् तवाहं स्वामिनी मता॥ १६ ॥

सात पुरुषों के द्वार तुम निर्मित दास हो और तुम चेटक (दूत) भी हो। तुम्हें मैंने खरीद लिया है इसीलिए मैं तुम्हारी स्वामिनी हूँ॥ १६ ॥

पतेच् चरणयोस् तस्या निर्भरं सम्पुताञ्जलिः।
वदेत् तत्रेदृशं वाक्यं सुखोत्तेजःकरं परम्॥ १७ ॥

इसके बाद उस साधक योगी को तत्काल ही उसके चरणों में गिरना चाहिए पूर्णरूप से शरणागत होकर हाथ जोड़ते हुए इस प्रकार का वाक्य बोलना चाहिए जो सुखकर तथा उत्तेजक भी हो॥ १७ ॥

त्वं मे माता पितुर् भार्या त्वं मे च भागिनेयिका।
भगिनीपुत्रभार्या च त्वं स्वसा त्वं च मामिका॥ १८ ॥

तुम मेरी माँ अर्थात् पिता की भार्या हो। तुम भाञ्जी भी हो। बहन का नातिनी भी हो। उसकी भार्या भी हो। तुम बहन और भाभी भी हो॥ १८ ॥

तवाहं सर्वथा दासस् तीक्ष्णभक्तिपरायणः।
पश्य मां कृपया मातः स्नेहदृष्टिनिरीक्षणैः॥ १९ ॥

मैं आपका दास हूँ और अत्यन्त तीव्रभक्त भी हूँ। हे माँ! कृपा करके स्नेहदृष्टि के निरीक्षणपूर्वक मुझे देखो॥ १९ ॥

ततः सा पुरुषं श्लिष्ट्वा चुम्बयित्वा मुहुर् मुहुः।
ददाति त्र्यक्षरं मस्ते वक्त्रे वक्त्ररसं मधु॥ २० ॥

उसके बाद वह प्रज्ञापारमिता नामक स्त्री उसे आलिङ्गन पूर्वक बारम्बार चुम्बन करती है फिर तीन अक्षरों का दान करती है उसके मस्तक पर फिर मुख में अत्यन्त मधुर मुख का रस॥ २० ॥

पद्मं चोषापयेत् तस्य दर्शयेन् नेत्रविभ्रमं।
वक्त्रे च चर्चितं दत्त्वा कुचेन पीडयेत् हृदम्॥ २१ ॥

पद्म के रस का आस्वादनपूर्वक विचित्र नेत्र विभ्रम को दिखाती हुई मुख में चुम्बन देती हुई दोनों स्तनों से उस (योगी) पुरुष के हृदय को ताडन करती है॥ २१ ॥

संमुखं तन्मुखं दृष्ट्वा नखं दत्त्वोचितालये।
वदेत् तस्येदृशं वाक्यं भक्ष वैरोचनं मम॥ २२ ॥

फिर सामने से उसका मुख देखकर उचित स्थान (भग) में नखों से कुतेर कर उस पुरुष को इस प्रकार बोलती है तुम मेरे वैरोचन - शोणित-रज का भक्षण करो॥ २२ ॥

पिबाक्षोभ्यजलं पुत्र सपित्रा दासको भव।
तब गोस्वामिनी चाहं माता राजकूलीत्य अपि॥ २३ ॥

हे पुत्र तुम मेरा अक्षोभ्य जल को पिओ और अपने पिता सहित तुम मेरे दास बन जाओ। मैं तुम्हारी गोस्वामिनी हूँ, माता हूँ और राजकूली भी हूँ॥ २३ ॥

मदीयं चरणं गच्छ शरणं वत्स निरन्तरम्।
मया संवर्धितो यस्मात् त्वम् आनर्ध्यम् उपागत:॥ २४ ॥

प्रिय पुत्र तुम मेरे चरणों के शरण में आओ - निरन्तर, तुम्हें मैंने हे सम्बन्धित किया है। तुम मेरे पास ही कृतज्ञ भाव से आए हो॥ २४ ॥

कृतज्ञो भव भो वत्स देहि मे वज्रजं सुखम्।
त्रिदलं पङ्कजं पश्य मध्ये किञ्जल्कभूषितम्॥ २५ ॥

हे वत्स! तुम कृतज्ञ हो जाओ। मुझे वज्रजन्य सुख दे दो। तीन दल वाले कमल को देखो। बीच में अङ्कुर से वह विभूषित है॥ २५ ॥

अहो सुखावतीक्षेत्रं रक्तबुद्धोपशोभितं।
रागिणां सुखदं शान्तं सर्वकल्पविवर्जितम्॥ २६ ॥

अहो यह अद्भुत सुखावती क्षेत्र है। जो रक्त बुद्ध के द्वारा सुशोभित है। और वह रागियों के लिए सुखद, शान्त तथा सभी विकल्पों से रहित भी है॥ २६ ॥

माम् उत्तानेन सम्पात्य रागविह्वलमानसाम्।
स्कन्धे पादयुगं दत्त्वा ममाधोर्ध्वं निरीक्षय॥ २७ ॥

तुम मुझे, आकाश की ओर मेरा मुख कर कर लिटा दो, जो मैं राग से विह्वल मानसिक स्थिति की हो गई हूँ, मेरे स्कन्धों पर दो पैर रखकर मेरे नीचे और ऊपर दोनों तरफ निरीक्षण करो॥ २७ ॥

स्फुरद्वज्रं तत: पद्ममध्यरन्ध्रे प्रवेशय।
देहि धापसहस्त्रं त्वं लक्ष्यकोटिं अथार्बुदम्॥ २८ ॥

स्फुरणशील वज्र को फिर पद्म के बीच के रन्ध (छेदा) में प्रवेश कराओ तथा हजारों आनन्दात्मक धक्कों को दे दो तथा अनन्त कोटि अर्बुद वार तुम मुझे आनन्दित करते ही रहो॥ २८ ॥

मदीये त्रिदले पद्मे मांसवर्तिसमन्विते।
स्ववज्रं तत्र प्रक्षिप्य सुखैश् चित्तं प्रपूजय॥ २९ ॥

मेरे त्रिदल तथा मांस युक्त पद्म में अपने वज्र का निक्षेपण करके सुखपूर्वक चित्त की पूजा करो॥ २९ ॥

वायु वायु सुपद्मं मे सारात् सारं अनुत्तरम्।
वज्रस्याग्रेण सम्बुद्धं रक्तं बन्धूकसंनिभम्॥ ३० ॥

शीतल-मन्द वायु के द्वारा प्रवर्धित मेरे सुन्दर पद्म के सार (रहस्य-) सुगन्ध को, जो अत्यन्त उत्तम है, वज्र के अग्रभाग से सम्बुद्ध रक्त बन्धुक पुष्प के सदृश पद्म को ग्रहण करो॥ ३० ॥

ब्रुवन्तीम् इति तां ध्यायन् स्तब्धीभूयैकचेतसा।
भावयेत् तगाकं सौख्यं निश्चलो गाढचित्ततः॥ ३१ ॥
तस्यै प्रत्युत्तरं दद्याद् विलम्ब त्वं प्रिये क्षणम्।
यावत् स्त्रीदेहगं रूपं क्षणमात्रं विचिन्तये॥ ३२ ॥

इस प्रकार बोलती हुई प्रज्ञा स्त्री का ध्यान करते हुए, एकाग्र एवं स्तब्ध होकर उससे समुत्पन्न सौख्य की भावना कर निश्चल और गाढ चित्त होकर फिर उस स्त्री को इस प्रकार उत्तर देना चाहिए -

हे प्रिये तुम थोड़ी देर रुको। जब तक मैं स्त्री देह में अवस्थित रूप को देख सकूँ। और उसका चिन्तन कर सकूँ॥ ३१-३२॥

स्त्रीम् एकां जननीं खलु त्रिजगतां सत्सौख्यदात्रीं शिवाम्।
विद्वेषाद् इह निन्दयन्ति मुखरा ये पापकर्मस्थिताः॥
ते तेनैव दुरावगाहनरके रौद्रे सदा दुःखिताः।
क्रन्दन्तो बबहुवह्निदग्धवपुषस् तिष्ठन्ति कल्पत्रयम्॥ ३३ ॥

एक वही स्त्री है संसार में जननी के रूप में रहती है और जगत् को ही आनन्द सुख का दान करती है, कल्याण कारिणी है। ऐसी स्त्री की जो निन्दा करते हैं - द्वेषों के कारण वे निश्चय ही पापी लोग हैं। उसी निन्दा रूप दुष्कर्मों के कारण रौद्र नामक नरक में गिरते हैं। हमेशा दुःखित होते हैं तथा रोते हुए बहुत विघ्नों से दग्ध होकर तीन कल्प तक नारकीय जीवन बिताते हैं॥ ३३ ॥

किं तु वाच्यो गुणः स्त्रीणां सर्वसत्त्वपरिग्रहः।
कृपा वा यदि वा रक्षा स्त्रीणां चित्ते प्रतिष्ठिता॥ ३४ ॥

किन्तु स्त्रियों के गुणों का ही कीर्तन करना चाहिए। जो समग्र प्राणियों के कारक हैं। कृपा और रक्षा दोनों भी स्त्रियों के चित्तों में अवस्थित है॥ ३४ ॥

आस्तां तावत् स्वजनं परजनम् अपि पुष्णाति भिक्षया।
सा चेद् एवंरूपा नान्यथा स्त्री वज्रयोगिन्याः॥ ३५ ॥

अपने स्वजन हो अथवा दूसरें हों, भिक्षा करके भी स्त्री उनका पोषण करती है। वह इसी रूप की होती है। यदि ऐसा न हो तो स्त्री कैसे वज्रयोगिनी हो सकती है॥ ३५ ॥

आस्तां तु दर्शनं तस्याः स्पृष्टिघृष्टिं च दूरतः।
यस्याः स्मरणमात्रेण तत्क्षणं लभ्यते सुखम्॥ ३६ ॥

ऐसी स्त्री का दर्शन करना चाहिए। स्पर्श और घर्षण तो दूर से ही करना उचित है। जिनके स्मरण मात्र से तत्काल ही सुख प्राप्त किया जा सकता है॥ ३६ ॥

पञ्चैव विषयाः स्त्रीणां दिव्यरूपेण संस्थिताः
ताम् उद्वाहितां कृत्वा सुखं भुञ्जन्ति मानवः॥ ३७ ॥

दिव्य रूप से अवस्थित पाँच विषय ही स्त्रियों के कहे गए हैं। उन्हें विवाहित करके सुख का भोग मनुष्य करते हैं॥ ३७ ॥

तस्माद् भो दोषनिर्मुक्ते सर्वसद्गुणमण्डिते।
पुण्ये पुण्ये महापुण्ये प्रसादं कुरु मे ऽम्बिके॥ ३८ ॥

हे दोषरहित देवि! आप समग्र सद्गुणों की खान हो! आप पुण्यशालिनी हो। महापुण्ययुक्त हो। हे अम्बिका मेरे ऊपर प्रसन्न हो जाओ॥ ३८ ॥

ततस् तां गाढतो दृष्ट्वा स्वौष्ठं दन्तेन पीडयेत्।
कुर्वन् सीत्कारकं योगी तां च कुर्याद् विनग्रिकाम्॥ ३९ ॥

इसके बाद उस स्त्री को गंभीरता पूर्वक देखकर अपने होंठ को अपने दातों से दबाकर सीत्कार ध्वनि निकालते हुए वह योगी उस स्त्री को निर्वस्त्र कर दे॥ ३९ ॥

कुर्यात् सुखोदयं बन्धं बन्धं च दोलाचालनम्।
बन्धं जानुग्रहं चैव बन्धं चाप्य् ऊरुमर्दनम्॥ ४० ॥

धीरे-धीरे सुख का उदय करते हुए बन्धनों को खोलकर उसे थपकी देते हुए - पीड़् के तरह हिलाते हुए, अनुग्रह पूर्वक उरुओं का मर्दन करता रहे॥ ४० ॥

पादचालनबन्धं च बन्धं च भूमिचापितम्।
बन्धं समदन्तकं चैव बन्धं च चित्रसंज्ञकम्॥ ४१ ॥

पैरों का बन्ध लगाने के बाद भूमि में भी बन्धन करना चाहिए। दातों का बन्ध चित्त संज्ञक बन्ध भी उस योगी को लगाना चाहिए॥ ४१ ॥

भ्रमरीजालं बन्धं च यन्त्रारूढोर्ध्वपदकम्।
तथैव कूर्मबन्धं च सर्वतोभद्रम् एव च॥ ४२ ॥

भ्रमरीजाल का बन्धन, यन्त्रारूढ ऊर्ध्व पादात्मक बन्ध, कूर्म बन्ध एवं सर्वतोभद्र बन्ध भी उसी समय करना चाहिए॥ ४२ ॥

तत्र पर्यङ्कमध्ये तु स्त्रियं चोत्कुटुकासनां।
कृत्वा बाहुयुगं स्कन्धे स्वस्य गाढेन योजयेत्॥ ४३ ॥

पर्यङ्क के बीचों बीच उस स्त्री को उत्कुटासन में रखकर उसके स्कन्धों में दोनों हाथों को रखकर अपने में योजित करें॥ ४३ ॥

स्वस्य बाहुयुगं तस्याः कक्षमध्याद् विनिर्गतम्।
पद्मे प्रक्षिप्य वज्रं तु ख्यातो बन्धः सुखोदयः॥ ४४ ॥

अपने दोनों हाथ जो उसके कक्ष से बाहर निकालकर अपने वज्र को उसके पद्म में प्रक्षिप्त करना ही सुखदायक बन्ध कहलाता है॥ ४४ ॥

द्वयोर् हस्तयुगं वेणी बद्धम् अन्योन्ययोगतः।
ईषच् च चालयेद् द्वाभ्यां ख्यातो ऽयं दोला चालनः॥ ४५॥

दोनों हाथों से उस स्त्री के वेणी (बालों को) समूह में बाँधकर एक दूसरे के योगपूर्वक, उस स्त्री के द्वारा भी शिर में दोनों हाथों से पकड़कर दोनों के थोड़ा थोड़ा हिलने जो योग होता है वह दोलाचालन कहा जाता है॥ ४५ ॥

तस्या जानुद्वयं स्वस्य हृदि कृत्वा तु सम्पुटम्।
दोला चालनकरन्यासाद् बन्धो ऽयं जानुकग्रहः॥ ४६ ॥

उसके दोनों घुटनों को अपने हृदय में संपुटित कर रखकर दोनों हाथों को मिलाकर हिलाने से जो बन्ध होता है उसे जातुकग्रह कहा जाता है॥ ४६ ॥

तस्या पादतलौ स्वस्य चोरुमूले नियोजयेत्।
सुखोदयकरन्यासाद् बन्धो ऽयं चोरुमर्दनः॥ ४७ ॥

उस स्त्री के दोनों पैरों के तलवों को अपने जङ्घों में रखकर सुख देने वाले हाथों के न्यास से जो बन्ध होता है उसे उरुमर्दन बन्ध कहते हैं॥ ४७ ॥

तस्याः पादतलौ नाभौ हृदि पार्श्वद्वये ऽपि हि।
दोलाचालनकरन्यासाद् बन्धो ऽयं पादचालनः॥ ४८ ॥

उसके दोनों पादतलों को नाभि, हृदय, दोनों बगलों में रखकर धीरे-धीरे चालन करने से पादचालन बन्ध होता है॥ ४८ ॥

तस्याः पूलद्वयं भूमौ संस्थाप्य क्रोडकोटरे।
सुखोदयकरन्यासाद् बन्धो ऽयं भूमिचापितः॥ ४९ ॥

उस दोनों जंघों को भूमि में रखकर दोनों पैरों के अपने गोद में रखकर सुखोदय कर न्यास के द्वारा जो बन्ध होता है उसे भूमि चापित बन्ध कहते हैं॥ ४९ ॥

ताम् उत्कुटुकेन संस्थाप्य द्विपादं च प्रसारयेत्।
बन्धः समदन्तको ज्ञेयः प्रत्येकं चापि सारयेत्॥ ५० ॥

उसको दोनों दातों को मिलाकर दोनों पैरों को प्रसारित करने के बाद उसके बाद जो योग होता है उसे समदन्तक बन्ध कहा जाता है। उस अवसर पर प्रत्येक दन्त को एक दूसरे पर रगड़ना चाहिए॥ ५० ॥

तस्याः पादयुगं वक्त्रं कृत्वा वामे प्रयोजयेत्।
सव्ये ऽपि संमुखे चापि हृदा पृष्ठं स्पृशेत् ततः॥ ५१ ॥

उसके दोनों पैरों को मुख की ओर फैलाकर वाम भाग के तरफ कर दे फिर दाहिने की ओर मुख करके हृदय से पिछले भाग का स्पर्श करें॥५१॥

हस्तादिमर्दनं कुर्याद् बन्धो ऽयम् चित्रसंज्ञकः।
पुनः सुखोदयं कृत्वा ताम् उत्तानेन पातयेत्॥ ५२ ॥

अब हाथ, पैर आदि का मर्दन करना यह चित्त संज्ञक बन्धन है। फिर सुख का उदय कराकर उसे ऊपर की ओर मुख करके लिटा दे॥ ५२ ॥

सव्येन च करेणैव वज्रं पद्मे निवेशयेत्।
तस्या जानुतले गृह्य कफण्य् ऊर्ध्वं नियोजयेत्॥ ५३ ॥

एक दाहिने हाथ से अपने वज्र को उसके पद्म में विनिवेश कर दे। उसके बाद घुटने के पिछले भाग में अपने घुटने से दबाकर दोनों हाथों को वेणी पर ले जावे॥ ५३ ॥

अन्योन्यवेणिहस्ते च भ्रमरीजालम् इति स्मृतम्।
तस्याः पादयुगं दत्त्वा स्वस्कन्धोपरि निर्भरम्॥ ५४ ॥

उस स्त्री को भी पुरुष के मूर्धा पर हाथ से पकड़ना चाहिए। इस प्रकार दोनों को दोनों के पकड़ कर खींचने से उसे भ्रमरी जाल बन्ध करते हैं। उसके बाद उस स्त्री के दोनों पाउ अपने स्कन्धों में रखना चाहिए।

यन्त्रारूढो ह्य् अयं बन्धो वेशावेशप्रयोगतः।
तस्या वामं पदं स्कन्धे सव्यं वामोरुमूलतः॥ ५५ ॥
तस्याः सव्यं पदं स्कन्धे वामं सव्योरुमूलतः।
ऊर्ध्वपादो ह्य् अयं बन्धः सत्सुखो दुःखनाशनः॥ ५६ ॥

इसे यन्त्रारूप बन्ध कहते हैं क्योंकि वे वेश-आवेश का प्रयोग इसमें होता है। उसके वाम पाद को स्कन्ध देश में रखकर जो वाम उरु से ऊपर तक हो उसका दाहिना पैर अपने स्कन्धे पर रखकर फिर सव्य उरु मूल से ऊर्ध्व के तरफ पैर रखना ऊर्ध्वपाद कहलाता है। यह सुखद एवं दुःखनाशक कहा गया है॥ ५५-५६॥

तस्याः पादतले वक्षोमध्ये समे नियोजयेत्।
बाहूभ्यां पीडयेज् जानू कूर्मबन्ध उदाहृतः॥ ५७ ॥

उसके पैर के तले में, वक्ष में भी समान रूप से पीतित करके बाहुओं से घुटनों को दबायें यह कूर्म बन्ध कहा जाता है॥ ५७ ॥

तस्याः पादतले नेत्रे कर्णे मूर्ध्नि नियोजयेत्।
बन्धो ऽयं सर्वतोभद्रः सर्वकामसुखप्रदः॥ ५८ ॥

उसके पैर के तले में, नेत्र में, कान में मूर्धा में (नियोजित) बन्धन करें। यह बन्ध सर्वतोभद्र कहा गया है जो सभी कामसुखों के देने वाले है॥ ५८ ॥

चित्रपर्यन्तकं यावत् कुर्यात् सर्वं विचित्रकम्।
क्रोडेन पीदयेत् गाढं चण्डरोषणयोगतः॥ ५६ ॥

चित्र पर्यन्त जब तक विचित्र बन्ध को करता है उसी समय दोनों बहुओं से गाढ आलिङ्गन करना चाहिए। यह चण्डरोषण योग से हुआ करता है॥ ५६ ॥

चुम्बयेच् च मुखं तस्या यावदिच्छं पुनः पुनः।
उन्नाम्य वदनं दृष्ट्वा यथेच्छं वाक्यकं वदन्॥ ६० ॥

उसके मुख का चुम्बन करें जितनी इच्छायें हो बारम्बार, इसके बाद उसके बदन को उठाकर उसे देखना चाहिए फिर इच्छानुसार वाक्यों को बोलना चाहिए॥ ६० ॥

जिह्वां च चूषयेत् तस्याः पिबेल् लालां मुखोद्भूताम्।
भक्षयेच् चर्चितं दन्तमलं सौख्यं विभावयेत्॥ ६१ ॥

उनकी जिह्वा का लेहन करने के बाद, उसके मुख से समुद् भूत लाल का पान भी करें। दन्तमल का भक्षण करें जिससे सौख्य की प्राप्ति होगी॥ ६१ ॥

पीडयेद् दन्तजिह्वाम् ईषद् आधरपिधानिके।
जिह्वया नासिकारन्ध्रं शोधयेन् नेत्रकोणिकाम्॥ ६२ ॥

दातों से थोड़ा सा जीभ को टोके और नीचे के होठों को भी, जीभ से नासारन्ध्रों को सफ करें और नेत्रों के मैल को भी साफ करें॥ ६२ ॥

दन्तकक्षाञ् च तगातं मलं सर्वं च भक्षयेत्।
मस्तं नेत्रं गलं कर्णं पार्श्वं कक्षं करं स्तनम्॥ ६३ ॥
चुम्बयित्वा नखं दद्यात् त्यक्त्वा नेत्रदयं स्त्रियाः।
मर्दयेत् पाणिनां चुञ्चं चूषयेद् दंशयेत् ततः॥ ६४ ॥

दाँतों से निकला हुआ सभी मलों को साफ करें। उसे खा जाए। मस्तक, नेत्र, गला, कान, बगल और स्तनों का भी स्पर्श एवं चुम्बन करने के बाद नखक्षत करना चाहिए केवल दो आँखों को छोड़कर स्त्रियों के चुचुक-दोनों स्तनों का चुम्बन तथा दंश करना चाहिए साथ ही हाथों से मर्दन भी करना चाहिए॥ ६३-६४ ॥

स्वयम् उत्तानिकां कृत्वा चुम्बयेत् सुन्दरोदरम्।
अत्रैवाहं स्थितः पूर्वं स्मृत्वा स्मृत्वा मुहुर् मुहुः॥ ६५ ॥

उसे स्वयं ही लिटाकर उसके उदर को चुम्बन करना चाहिए। क्योंकि इस उदर में मैं कभी रहा था यह स्मरण बारम्बार करते हुए उसे चूमना चाहिए॥ ६५ ॥

हस्तेन स्पर्शयेत् पद्मं वायु सुन्दरम् इदं ब्रुवन्।
दद्याच् चुम्बनखं तत्र पश्येन् निष्कृष्य पाणिना॥ ६६ ॥

हाथों से पद्म का स्पर्श करते हुए धीरे-धीरे बोलते हुए चुम्बन तथा नख भी देने चाहिए। हाथों से मर्दन करते ही रहना चाहिए॥ ६६ ॥

घ्रात्वा गन्धं च तद् रन्ध्रं शोधयेद् रसनया स्त्रियाः।
प्रविष्टो ऽहं यथानेन निःसृतश् चाप्य् अनेकशः॥ ६७ ॥
वदेत् तत्रेदृशं वाक्यं पन्थायं नासिकरज्जुः।
अयम् एव षड्गतेः पन्था भवेद् अज्ञानयोगतः॥ ६८ ॥

उसके गन्ध को सूँघने के बाद रसना से नासिका रन्ध्रों की सफाई करनी चाहिए। इसी से मैं कई बार प्रविष्ट हुआ हूँ और यहीं से निकला भी हूँ इस प्रकार सोचते हुए इस प्रकार बोलना चाहिए की यही मेरे षड्गति का मार्ग रहा है - जो अज्ञान के कारण से हुआ था॥ ६७-६८ ॥

चण्डरोषणसिद्धेस् तु भवेद् ज्ञानप्रयोगतः।
ततः पद्मगतं स्वेदं रक्तं वा सुखसीत्कृतैः॥ ६९ ॥
भक्षयेच् च मुखं तस्याः सम्पश्यंस् च पुनः पुनः।
स नखं चोरुकं कृत्वा मर्दयेद् दासवत् पादौ॥ ७० ॥

भगवान् चण्डमहारोषण के सिद्धिपूर्वक ज्ञान के प्रयोग से पद्म में स्थित स्वेद, रक्त आदि सुख-पूर्वक सीत्कार द्वारा उसके मुख का भक्षण करके बारम्बार उसको देखकर उसके शरीर के अंगों का और पैर का दास के तरह ही मर्दन करें॥ ६९-७० ॥

मस्तके त्र्यक्षरं दद्याद् धृन्मध्ये लघुमुष्टिकम्।
ततश् चित्रात् परान् बन्धान् कुर्याद् योगी समाहितः॥ ७१॥

मस्तक में तीन अक्षर तथा हृदय में लघुमुष्टि देना चाहिए उसके बाद उत्तम चित्र नामक बन्ध में योगी प्रविष्ट हो जाता है॥ ७१ ॥

इच्छया ध्यायकं तत्र दद्यात् सौख्यैकमानसः।
यथेच्छं प्रक्षरेन् नो वा क्षरेत् सौख्यैकमानसः॥ ७२ ॥

इच्छापूर्वक वह योगी अपने ध्येय को प्राप्त कर सकता है। अपनी ही इच्छा से वह चाहे तो क्षरित हो या अक्षरित सुखपूर्वक वह कर सकता है॥ ७२॥

क्षरिते चालिहेत् पद्मं जानुपातप्रयोगतः।
भक्षयेत् पद्मगं शुक्रं शोनितं चापि जिह्वया॥ ७३ ॥

यदि वह क्षरित होता है तो पद्म को अपने जानु-पात प्रयोग पूर्वक चाट सकता है तथा पद्मस्थ शुक्र और शोणित का भी जिह्वा से भक्षण कर सकता है॥ ७३ ॥

नासया नलिकायोगात् पिबेत् सामर्थ्यवृद्धये।
प्रक्षाल्य जिह्वया पद्मं प्रज्ञाम् उत्थाप्य चुम्बयेत्॥ ७४ ॥

नाक के रन्ध से सामर्थ्य की वृद्धि के लिए वह पान कर सकता है और पद्म का जिह्वा से प्रक्षालन करके फिर प्रज्ञा को उठाकर चुम्बन करें॥ ७४ ॥

क्रोडीकृत्य ततः पश्चाद् भक्षयेन् मत्स्यमांसकम्।
पिबेद् दुग्धं च मद्यम् वा पुनः कामप्रवृद्धये॥ ७५ ॥

उसके बाद उस प्रज्ञा को अपने गोद में रखकर फिर मत्स्य और मांस का भक्षण करें। तथा कामशक्ति को बढ़ाने के लिए दुग्ध या मद्य का पान करें॥ ७५ ॥

श्रमं जीर्य ततः पश्चाद् इच्छायतु सुखादिभिः।
पुनः पूर्वक्रमेणैव द्वन्द्वम् अन्योन्यम् आरभेत्॥ ७६ ॥

श्रम को हटाकर अब फिर से सुख आदि से अपने संयुक्त करते हुए फिर पहले के ही क्रम से एक दूसरे के साथ द्वन्द्व का आरंभ करें॥ ७६ ॥

अनेनाभ्यासयोगेन साधितं च महासुखम्।
चण्डरोषपदं धत्ते जन्मन्य अत्रैव योगवित्॥ ७७ ॥

इस प्रकार के अभ्यास योग द्वारा प्राप्त किए हुए सुख के द्वारा वह योगी इसी जन्म में चण्डरोषण का पद प्राप्त करता है॥ ७७ ॥

रागिणां सिद्धिदानार्थं मया योगः प्रकाशितः।
वामजङ्घोपरि स्थाप्य सव्यजङ्घां तु लीलया॥ ७८ ॥
ख्यातो ऽयं सत्त्वपर्यङ्कः सर्वकामसुखप्रदः।
सव्यजङ्घोपरि स्थाप्य वामजङ्घां तु लीलया॥ ७९ ॥
ख्यातो ऽयं पद्मपर्यङ्कः सर्वकामसुखप्रदः।
पद्मपर्यङ्कम् आबध्य वामजङ्घोर्ध्वम् अर्पयेत्॥ ८० ॥
लीलया सव्यजङ्घां तु वज्रपर्यङ्कः स्मृतः।
भूमौ पादतले स्थाप्य समे संमुखदीर्घके॥ ८१ ॥

रागियों के सिद्धि प्राप्त करने के लिए ही मैंने यह योग प्रकाशित किया है। वाम जङ्घा के ऊपर दाहिने जङ्घा को लीलापूर्वक रखकर उस योग का आरंभ करना चाहिए। यह योग सत्त्व पर्यङ्क के नाम से विख्यात है जो सभी काम सुखों को देने वाला है। इसी प्रकार दाहिने जाँघ पर वाम जाँघ को लीला-पूर्वक रखकर वह योग आरंभ किया जाता है। यह योगमुद्रा पद्म पर्यङ्क के नाम से प्रसिद्ध है जो सर्व काम सुखों को देने वाला है - हसमें पद्म पर्यङ्क का बन्धन करके उसके ऊपर वाम जङ्घा को रखना चाहिए। लीलापूर्वक दाहिने जङ्घा को वहाँ रखने से वज्र पर्यङ्क हो जाता है। और पृथिवी में रखकर सामने ही उसे लम्बा करके रखना चाहिए॥ ७८-८१ ॥

सर्वकामप्रदं ज्ञेयं चैतद् उत्कुटुकासनम्।
भूमौ पादतले स्थाप्य वक्रे तिर्यक् सुदीर्घके॥ ८२ ॥
अर्धचन्द्रासनं ज्ञेयं एतत् कामसुखप्रदम्।
तिर्यक् जानुयुगं भूमौ गुल्फमध्ये तु पूलकम्॥ ८३॥
कृत्वा धन्वासनं चैतद् दिव्यकामसुखप्रदम्।
सत्त्वं पद्मं तथा वज्रं पर्यङ्कम् इति कल्पितम्॥ ८४ ॥

यह आसन सभी कामनाओं को पूरा करने वाला है, जो उत्कुटुकासन कहा जाता है। इसके लिए पृथिवी पैर रखकर लम्बा और थोड़ा टेढ़ा करके रहने से वह अर्धचन्द्रासन हो जाता है यह भी अत्यन्त सुख कारक कहा गया

है। इसके बाद दोनों घुटनों को पृथिवी पर रखकर गुल्फ को ऊपर उठाने से यह धनु आसन हो जाता है यह भी दिव्य काम सुख को देने वाला कहा गया है। इस प्रकार सत्त्व, पद्म, वज्र तथा पर्यङ्कों की कल्पना की गई है॥ ८२-८४॥

उत्कूटुकं चार्धचन्द्रं च धन्व् आसनम् इदं मतम्।
अर्धचन्द्रासनासीनां स्त्रियं कृत्वा निरन्तरम्॥ ८५ ॥
पतित्वा संलिहेत् पद्मं गृह्णन् सुलक्षत्र्यक्षरम्।
पुनर् धन्वासनं कृत्वा स्वाननं तद्गुदान्तरे॥ ८६ ॥
पातयित्वा गुदं तस्याः संलिहेन् नासयापि च।
तदुत्पन्नं सुखं ध्याया%् चण्डरोषणयोगतः॥ ८७ ॥

उत्कुट और अर्धचन्द्र नामक ये आसन हैं। अब उस प्रज्ञा को अर्ध चन्द्रासन में रखकर निरन्तर खुद नीचे जमीन पर गिरकर तीन अक्षर जाप करते हुए फिर धनु आसन में रहकर उसके गुप्तांगों का लेहन करना चाहिए। इस प्रकार जो सुख उस अवसर पर उपलब्ध होता है उसका ध्यान करना चाहिए। क्योंकि वह योग चण्डरोषण योग से उपलब्ध होता है॥ ८५-८७॥

ततो मुक्तो भवेत् योगी सर्वसंकल्पवर्जितः।
विरागरहितं चित्तं कृत्वा मातां प्रकामयेत्॥ ८८ ॥
अनुरागात् प्राप्यते पुण्यं विरागाद् अधम् आप्यते।
न विरागात् परं पापं न पुण्यं सुखतः परम्।
ततश् च कामजे सौख्ये चित्तं कुर्यात् समाहितम्॥ ८९ ॥

उसके बाद वह योगी मुक्त हो जाता है। सभी कल्पना के जालों से भी मुक्त होता है। और उसे चित्त को रागरहित करके प्रमाण का ध्यान करना चाहिए। अनुराग से पुण्य और विराग से पाप उपलब्ध होता है। विराग से बढ़कर कोई पाप नहीं है और पुण्य से बढ़कर कोई सुख भी नहीं है। इसके बाद काम से समुत्पन्न सुख में चित्त को एकाग्र करना चाहिए॥ ८८-८९ ॥

अथ भगवती प्रमुदितहृदया भगवन्तं नमस्कृत्य अभिवन्द्य चैवम् आह॥ भो भगवन् किं नृणाम् एव केवलम् अयं साधनोपायो ऽन्येषाम् अपि वा॥

इस क्रम के बाद भगवती प्रज्ञा ने अत्यन्त प्रसन्न होकर भगवान् चण्डरोषण को नमस्कार और अभिनन्दन करके यह कहा है। हे भगवन्! क्या यह केवल मनुष्यों के लिए ही यह योग-साधना का उपाय है अथवा अन्यों के लिए भी है?

भगवान् आह।

भगवान कहते हैं।

अत्रानुरक्ता ये तु सर्वदिक्षु व्यवस्थिताः।
देवासुरा नरा नागास् ते ऽपि सिद्ध्यन्ति साधकाः॥ ६० ॥

इस योग में अनुरक्त और सभी दिशाओं में अवस्थित देव, असुर, मनुष्य और नाग आदि भी साधना से सिद्ध होते हैं॥ ६० ॥

अथैवं श्रुत्वा महेश्वरादयो देवा गौरीलक्ष्मीशचीरत्यादिदेवतीं गृहित्वा भावयितुम् आरब्धः। अथ तत्क्षणं सर्वे तल्लवं तन्मुहूर्तकं चण्डरोषणपदं प्राप्ता विचरन्ति महीतले। तत्र महेश्वरो वज्रशङ्करत्वेन सिद्धः। वासुदेवो वज्रनारायणत्वेन। देवेन्द्रो वज्रपाणित्वेन। कामदेवा वज्रानङ्गत्वेन। एवम् प्रमुखा गङ्गानदीबालुकासमा देवपुत्राः सिद्धाः॥ ६१ ॥

अब भगवान् चण्डरोषण के इस कथन के बाद महेश्वर आदि देवताओं ने गौरी, लक्ष्मी, शची इत्यादि देवियों को लेकर योग का आरंभ किया। अब उसी क्षण सभी देवताओं ने चण्डरोषण पद प्राप्त किया और अब पृथिवी में विचरण करते हैं। महेश्वर वज्रशङ्कर के रूप में सिद्ध हैं। वासुदेव वज्र-नारायण के रूप में। देवेन्द्र वज्र पाणि के रूप में। कामदेव वज्रानङ्गत्व के रूप में सिद्ध हो गए हैं। इसी प्रकार गङ्गा नदी बालुका के समान देवगण भी सिद्ध हो गए हैं॥ ६१ ॥

पञ्चकामगुणोपेताः सर्वसत्त्वार्थकारकाः।
नानामूर्तिधराः सर्वे भूता मायाविनो जिनाः॥ ६२ ॥

पाँच कामगुणों से युक्त तथा सभी प्राणियों के हितकारक, अनेक प्रकार के शरीरधारी होकर वे सभी प्राणी मायावी जिनके तरह हो गए हैं॥ ६२ ॥

यथा पङ्कोद्भवं पद्मं पङ्कदोषैर् न लिप्यते।
तथा रागनयोद्भूता लिप्यन्ते न च दोषकैः॥ ६३ ॥

जैसे कीचड़ से निकले हुए कीचड़ में कीचड़ का दोष नहीं लगता, उसी प्रकार राग योग से समुत्पन्न प्राणी रागदोष से लिप्त नहीं होते॥ ६३ ॥

इत्य् एकल्लवीराख्ये श्री चण्डमहारोषणतन्त्रे निष्पन्नयोगपटलः षष्ठः॥

इस प्रकार एकलवीर नामक चण्डमहारोषण तन्त्र में निष्पन्नयाग नामक छठा पटल पूर्ण हुआ।

पटलः ७

अथ भगवत्य् आह।

भगवती प्रज्ञा ने प्रश्न किया है।

मैथुनं कुर्वतो जन्तोर् महान् स्यात् परिश्रमः।
तस्य विश्रमणं नाथ जन्त्वर्थे वक्तुम् अर्हसि॥ १ ॥

भगवन्! मैथुन करने वाले प्राणियों को महान् परिश्रम हुआ करता है उनका किस प्रकार का विश्राम होता है कृपया आप बताने का कष्ट करें॥ १ ॥

भगवान् आह।

भगवान् चण्डमहारोषण कहते हैं।

स्त्रैण्यं सौख्यं समालम्ब्य स्वप्रत्यक्षे निरोधितम्।
भुञ्जीत मत्स्यमांसं तु पिबेन् मद्यं समाहितः॥ २ ॥

स्त्री सम्बन्धी सुख के अनुभव के बाद अपने सामने ही निर्मित मत्स्य एवं मांस का भक्षण तथा मद्य का सेवन करना चाहिए॥ २ ॥

अन्यभक्ष्यं यथालब्धं भक्तादिं क्षीरनीरकम्।
स्त्रीणां प्रथमतो दद्यात् तदुत्सृष्टं तु भक्षयेत्॥ ३ ॥

अन्य जो भी भक्ष्य पदार्थ है जैसा कि भात, दूध या पेय में जल आदि वह सबसे पहले स्त्री को देने के बाद जो अवशिष्ट होता है उसे ही तब खाना चाहिए॥ ३ ॥

तस्या उत्सृष्टपत्रे तु भोक्तव्यं च निरन्तरम्।
तस्याश् चाचमनं नीरं पद्मप्रक्षालनं पिबेत्॥ ४ ॥

उसके खाए हुए जुठे पत्तो पर ही निरन्तर भक्षण करना चाहिए। उसके पद्म के प्रक्षालन करके उस जल से आचमन करना चाहिए॥ ४ ॥

गुद प्रक्षालनं गृह्य मुखादिं क्षालयेद् व्रती।
वान्तं तु भक्षयेत् तस्या भक्षयेच् च चतुःसमम्॥ ५ ॥

उस प्रज्ञा गुदा का प्रक्षालन करके उस जल से अपने मुख का क्षालन करना चाहिए। उसके द्वारा किया गया वान्त का भक्षण करना चाहिए॥ ५ ॥

पिबेच् च योनिजं वारि भक्षयेत् खेटपिण्डकम्।
यथा संकारम् आसाद्य वृक्षो भोति फलाधिकः॥ ६ ॥

योनि से सम्बन्धित जल का ग्रहण करके फिर खेट-पिण्ड का भक्षण करना चाहिए। जैसे मलों को प्राप्त करके एक वृक्ष ज्यादा फल देने में समर्थ होता है॥ ६ ॥

तथैवाशुचिभागेन मानवः सुखसत्फलः।
न जरा नापि रोगश् च न मृत्युम् तस्य देहिनः॥ ७ ॥

उसी प्रकार अपवित्र भागों के योगों से मानव सुखी एवं सम्पन्न होता है। उसके कारण न जटा, न रोग और न ही मृत्यु ही होती है॥ ७ ॥

सेवयेद् अशुचिं यो ऽसौ नियागो ऽपि स सिध्यति।
भक्ष्यं वा यदि वाभक्ष्यं सर्वथैव न कल्पयेत्॥ ८ ॥

जो व्यक्ति योग रहित भी क्यों न हो यदि इन अशुचियों का सेवन करता है तो वह भी सिद्ध होता है। भक्ष्य और अभक्ष्य की कल्पना उसे नहीं करनी चाहिए॥ ८ ॥

कार्याकार्यं तथा गम्यम् अगम्यं चैव योगवित्।
न पुण्यं च वा पापं च स्वर्गं मोक्षं न कल्पयेत्॥ ६ ॥

योगी को कभी भी कार्य और अकार्य, गम्य एवं अगम्य, पाप तथा पुण्य, इसी प्रकार स्वर्ग और मोक्ष की भी कल्पना नहीं करनी चाहिए॥ ६ ॥

सहजानन्दैकमूर्तिस् तु तिष्ठेद् योगी समाहितः।
एवं योगयुतो योगी यदि स्याद् भावनापरः॥ १० ॥
चण्डरोषैकयोगेन तद् आहंकारधारकः।
यदि ब्रह्मशतं हन्याद् अपि पापैर् न लिप्यते॥ ११ ॥

केवल सजह आनन्द में यदि योगी एकाग्र होकर रहता है तो वह ऐसा योग में निरन्तर लगा हुआ योगी उसी भावनात्मक एकता के कारण चण्डरोषण

योग से एकीभूत होकर मैं चण्डरोषण हूँ इस अनुभव को प्राप्त होता हुआ सभी पापों से मुक्त होता है। यहाँ तक कि सौ ब्राह्मणों के हत्या जन्य पाप से वह लिप्त नहीं होता॥ १०-११॥

तस्माद् एवंविधं नाथं भावयेच् चण्डरोषणम्।
येनैव नरकं यान्ति जन्तवो रौद्रकर्मणा॥ १२ ॥
सोपायेन तु तेनैव मोक्षं यान्ति न संशयः।
मनःपूर्वगमं सर्वं पापपुण्यं इदं मतम्॥ १३ ॥

इसीलिए इस प्रकार के भगवान् चण्डरोषण की भावना करनी चाहिए। जिस रौद्र भयङ्कर कर्म से मनुष्य नरक जाते हैं उसी को उपाय के रूप में प्रयोग करके वे ही मनुष्य मोक्ष को प्राप्त होते हैं। इसमें सन्देह नहीं है। क्योंकि यह सब पाप-पुण्य मन के द्वारा ही किए जाते हैं॥ १२-१३॥

मनसः कल्पनाकारं गतिस्थानादिभेदितम्।
विषं नामन्त्रितं यद्वद् भक्षणाद् आयुषः क्षयः॥ १४॥

मन की कल्पना का क्षेत्र गति और स्थान आदि हैं। बिना अभिमन्त्रित विष के भक्षण से मृत्यु होती है। उसी विष को अभिमन्त्रित करके खाने से सुख और आयु की वृद्धि होती है॥ १४ ॥

तद् एव मन्त्रितं कृट्वा सुखम् आयुश् च वर्धते।
अथ तस्मिन् क्षणे देवी प्रज्ञापारमिता वरा॥ १५ ॥
कर्त्तिकर्परकरव्यग्रा चण्डरोषणमुद्रया।
वज्रचण्डी महाक्रुद्धा वदेद् ईदृशम् उत्तमम्॥ १६ ॥

अब उसी क्षण भगवती श्रेष्ठ स्वरूप वाली प्रज्ञापारमिता खड्ग हाथ में लेकर व्यग्रतापूर्वक चण्डरोषण की मुद्रा से युक्त होकर वज्रचण्डी, अतिशय क्रुद्ध होकर इस प्रकार उत्तम विचार व्यक्त करती है॥ १५-१६ ॥

मदीयं रूपकं ध्यात्वा कृत्वाहंकारम् उत्तमम्।
यदि ब्रह्मशतं हन्यात् सापि पापैर् न लिप्यते॥ १७ ॥

मेरे स्वरूप का ध्यान करते हुए अहंकार पूर्वक (मैं प्रज्ञापारमिता हूँ) सौ ब्राह्मणों की हत्या भी कोई करता है तो वह पाप से लिप्त नहीं होता॥ १७ ॥

मदीयं रूपम् आधाय महाक्रोधैकचेतसा।
मारयेन् मत्स्यपक्षींश् च योगिनी न च लिप्यते॥ १८ ॥

मेरे रूप को ग्रहण करके, महाक्रोध के वशीभूत चित्त बनाकर जो योगिनी मत्स्य-पक्षी आदि का वध करती है उसे पाप नहीं लगता है॥ १८ ॥

निर्दयाश् चञ्चलाः क्रुद्धा मारणार्थार्थचिन्तकाः।
स्त्रियः सर्वा हि प्रायेण तासाम् अर्थे प्रकाशितम्॥ १६ ॥

निर्दय, चञ्चल, क्रुद्ध, केवल मारण के प्रयोजनार्थ ही चिन्तन करने वाली सभी स्त्रियाँ केवल उनके प्रयोजनार्थ ही प्रकाशित की गई हैं॥ १६ ॥

इत्य् एकल्लवीराख्ये श्रीचण्डमहारोषणतन्त्रे देहप्रीणनपटलः सप्तमः॥

इस प्रकार एकल वीर नामक चण्डमहारोषण तन्त्र में
सातवाँ देहप्रीणन नामक पटल पूर्ण हुआ॥

पटलः ८

अथ भगवान् भगवतीं पञ्चमण्डलैर् नमस्कृत्याह।

भगवान् चण्डमहारोषण ने पाँच मण्डलों के साथ भगवती प्रज्ञा को नमस्कार कर यह कहा।

त्वदीयं योगिना रूपं ज्ञातव्यं तु कथं प्रिये।
भगवती चाराधिता केन योगिनां वा भविष्यति॥ १ ॥

हे देवि! योगियों के द्वारा आपके स्वरूप को कैसे जाना जाता है। किस प्रकार भगवती की आराधना योगियों से की जाती है कृपया आप बतायें॥ १ ॥

अथ भगवत्य् आह।

भगवती प्रज्ञा पारमिता कहती है।

यावद् धि दृश्यते लोके स्त्रीरूपं भुवनत्रये।
तन् मदीयं मतं रूपं नीचानीचकुलं गतम्॥ २ ॥

तीनों संसारों में जितनी प्रकार की भी स्त्रियाँ हैं वे सब मेरे ही रूप हैं। नीच से नीच कुल में भी जो स्त्रियाँ हैं वे सब मैं ही हूँ॥ २ ॥

देवी चासुरी चैव यक्षिणी राक्षसी तथा।
नागिनी भूतिनीकन्या किन्नरी मानुषी तथा॥ ३ ॥
गन्धर्वी नारकी चैव तिर्यक्कन्याथ प्रेतिका।
ब्राह्मणी क्षत्रिणी वैश्या शुद्री चात्यन्तविस्तरा॥ ४ ॥
कायस्थी राजपुत्री च शिष्टिनी कर-उत्तिनी।
वणिजिनी वारिणी वेश्या च तरिणी चर्मकारिणी॥ ५ ॥

कुलत्रिणी हत्रिणी डोम्बी चण्डाली शवरिणी तथा।
धोबिनी शौण्डिणी गन्धवारिणी कर्मकारिणी॥ ६ ॥
नापिती नटिनी कंसकारिणी स्वर्णकारिणी।
कैवर्ती खटकी कुण्डकारिणी चापि मालिनी॥ ७ ॥
कापालिनी शंखिनी चैव वरुडिनी च केमालिनी।
गोपाली काण्ड कारी च कोचिनी च शिलाकुटी॥ ८ ॥
थपतिनी केशकारी च सर्वजातिसमावृता।
माता च भगिनी भार्या मामिका भागिनेयिका॥ ९ ॥
खुट्टिका च स्वसा चैव अन्या च सर्वजातिनी।
व्रतिनी योगिनी चैव रण्डा चापि तपस्विनी॥ १० ॥
इत्यादिबहवः सर्वाः स्त्रियो मद्रूपसंगताः।
स्थिता वै सर्वसत्त्वार्थं स्वस्वरूपेण निश्चिताः॥ ११ ॥

देवी, असुरी, यक्षिणी, राक्षसी, नागिनी, भूतिनी, कन्या, किन्नरी, मानुषी, गन्धर्वी, नारकी, तिर्यक्कन्या, प्रेतिका, ब्राह्मणी, क्षत्राणी, वैश्या, शूद्री अन्यजा, और भी विस्तृत रूप में - कायस्थी, राजपुत्री, शिष्टिनी, कर उत्तिनी, वणिजिनी, वारिणी, वेश्या, तारिणी, चर्मकारिणी, कुलत्रिणी, हत्रिणी, डोम्बी, चण्डाली, शवरिणी, धोबिनी, शौण्डिनी, गन्धवारिणी, कर्मकारिणी, नापिती, नटिनी, कंसकारिणी, स्वर्णकारिणी, कैवर्ती, खटकी, कुण्डकारिणी, मालिनी, कापालिनी, शंखिनी, वरुडिनी, केमालिनी, गोपाली, काण्डकारी, कोचिनी, शिलाकुटी, थपतिनी, केशकारी, तथा सभी जातियों की स्त्रियाँ, माता, भगिनी, भार्या, मामिका, भाञ्जी, खुट्टिका, स्वसा और भी सर्व जाती और सम्बन्ध की स्त्रियाँ - व्रतिनी, योगिनी, रण्डा, तपस्विनी, इत्यादि सभी स्त्रियाँ मेरे ही रूप में हैं या मुझ से भिन्न नहीं हैं। वे सभी स्त्रियाँ सभी प्राणियों के हित-सुख के लिए भिन्न भिन्न स्वरूप में (अपना = मेरा स्वरूप गोपन करके) रहती हैं॥ ३-११ ॥

तासाम् एव यथालाभं चुम्बनालिङ्गनादिभिः।
वज्रपद्मसमायोगाद् योगिनां भोन्ति सेविताः॥ १२ ॥

उन्हीं स्त्रियों का यथा उपलब्धता के हिसाब से चुम्बन आलिङ्गन

आदि द्वारा वज्र-पद्म के समागम पूर्वक योगियों के द्वारा सेवित होती हैं॥ १२ ॥

सेवितास् तु स्त्रियः सिद्धिं सर्वसत्त्वहितैषिणाम्।
ददन्ति क्षणमात्रेण तस्मात् संसेवयेत् स्त्रियम्॥ १३ ॥

वे स्त्रियाँ जब सेवित होती हैं सभी प्राणियों के लिए हितकारिणी होती हैं। तत्क्षण कल्याण करने में वे समर्थ हैं अतः इनकी सेवा करनी चाहिए॥ १३ ॥

स्त्रियः स्वर्गः स्त्रियो धर्मः स्त्रिय एव परं तपः।
स्त्रियो बुद्धः स्त्रियः सङ्घः प्रज्ञापारमिता स्त्रियः॥ १४ ॥

स्त्रियाँ ही स्वर्ग हैं, स्त्रियाँ धर्म, परं तप भी स्त्रियाँ हैं। स्त्रियाँ ही बुद्ध हैं, स्त्रियाँ सङ्घ हैं तथा प्रज्ञापारमिता भी स्त्रियाँ ही हैं॥ १४ ॥

पञ्चवर्णप्रभेदेन कल्पिता भिन्ननामतः।
नीलवर्णा तु या नारी द्वेषवज्रीति कीर्तिता॥ १५ ॥

पाँच भिन्न-भिन्न वर्णों के प्रकारों से स्त्रियाँ वर्गीकृत हैं। उनके नाम भिन्न हैं। नीलवर्ण वाली नारी द्वेषवज्री कहलाती है॥ १५ ॥

श्वेतगौरा तु या नारी मोहवज्री हि सा मता।
पीतवर्णा तु या नारी सा देवी पिशुनवज्रिका॥ १६ ॥
रक्तगौरा तु या नारी रागवज्री प्रकीर्तिता।
श्यामवर्णा तु या नारी ईर्ष्यावज्रीति कथ्यते॥ १७ ॥
एकैव भगवती प्रज्ञा पञ्चरूपेण संस्थिता।
पुष्पधूपादिभिर् वस्त्रैः पद्यगद्याङ्गशोभनैः॥ १८ ॥
सम्भाषणनमस्कारैः सम्पुटाञ्जलिधारणैः।
दर्शनैः स्पर्शनैः चापि स्मरणैस् तद्वचः करैः॥ १९ ॥
चुम्बनालिङ्गनैर् नित्यं पूजयेद् वज्रयोगिनीं।
शक्तौ कायेन कर्तव्यम् अशक्तौ वाक्यचेतसा॥ २० ॥

श्वेत गौर वर्ण की नारी मोहवज्री है। पीतवर्ण की नारी पिशुनवज्रिका है। रक्तगौरा नारी रागवज्री है। श्यामवर्ण की ईर्ष्यावज्री है। एक ही भगवती

प्रज्ञा पञ्चरूप से रहती है। उसे भावपूर्ण होकर पुष्प, धूप, वस्त्र, स्तुति, संभाषण, नमस्कार-सम्पुटकरयुद्वारा, दर्शन, स्पर्शन, स्मरण एवं उनके वचनों का उच्चारण, चुम्बन, आलिङ्गन, आदि द्वारा नित्य ही ऐसी वज्रयोगिनियों की पूजा की जानी चाहिए। शक्ति होने पर इन सामग्रियों के साथ, शक्ति न होने पर केवल वचनों से ही उनकी पूजा करनी चाहिए॥ १६-२० ॥

तेनाहं पूजिता तुष्टा सर्वसिद्धिं ददामि च।
सर्वस्त्रीदेहरूपं तु त्यक्त्वा नान्या भवाम्य अहम्॥ २१ ॥

इस प्रकार जब मेरी पूजा होती है, मैं तुष्ट होकर सभी प्रकार की सिद्धि देती हूँ। मैं सभी स्त्रियों के देह के रूप में रहती हूँ। और कोई मेरा रूप नहीं है॥ २१ ॥

त्यक्त्वा स्त्रीपूजनं नान्यं मदीयं स्यात् प्रपूजनम्।
अनेनाराधनेनाहं तुष्टा साधकसिद्धये॥ २२ ॥

स्त्रियों की पूजा को छोड़कर मेरी अन्य कोई भी पूजा नहीं है। इस प्रकार के आराधना से साधक के सिद्धि के लिए मैं तुष्ट होती हूँ॥ २२ ॥

सर्वत्र सर्वदा नित्यं तस्य दृष्टिपथं गता।
मदीयाशेषरूपेण ध्यात्वा स्वस्त्रीं च कामयेत्॥ २३ ॥

सर्वत्र, सर्वदा, नित्य उस व्यक्ति के नजर के समक्ष मैं रहती हूँ। मेरे अनन्तरूपों का ध्यान करके अपनी स्त्री की कामना करें॥ २३ ॥

वज्रपद्मसमायोगात् तस्याहं बोधिदायिनी।
तस्मात् सर्वप्रकारेण ममाराधनतत्परः॥ २४ ॥

वज्र और पद्म के समागम से उसको मैं बोध देती हूँ। अतः सभी प्रकार से मेरे आराधना में तत्पर होना ही चाहिए॥ २४ ॥

चौरीम् अपि यदा कुर्याद् यदि वा प्राणिमारणम्।
वदेद् वाथ मृषावाक्यं भञ्जयेत् प्रतिमादिकम्॥ २५ ॥
साङ्घिकं भक्षयेद् वाथ स्तौपिकं परद्रव्यकम्।
न पापैर् लिप्यते योगी ममाराधनतत्परः॥ २६ ॥

यदि वह योगी मेरी आराधना में संलग्न हो तो वह चोरी करता हो, हिंसा-प्राणिवध आदि करता हो, झूठ बोलता हो, प्रतिमा का भञ्जन करता हो,

संघ भेद करता हो, स्तूपों का भञ्जन या पर द्रव्य हरण भी करता हो तो उन पापों से कभी लिप्त नहीं होगा॥ २५-२६ ॥

नखेन चूर्णयेद् यूकां वस्त्रस्थाम् अपि मारयेत्।
अनेनैव प्रयोगेण मां समाराधयेद् व्रती॥ २७ ॥

कपड़ों में या अन्य अंगों में लगे हुए यूका को जिस प्रकार खोज-खोजकर लाग मारते हैं उसी प्रकार मुझे हर जगह (मेरे स्वरूप में रहती स्त्री में) खोजकर आराधना करनी चाहिए॥ २७ ॥

न कुर्याच् च भयं पापे नारकादौ च दुर्गतौ।
भयं कुर्यात् तु लोकस्य यावच् छक्तिर् न लभ्यते॥ २८ ॥

नरक आदि दुर्गतियों से भी उस योची को भयभीत नहीं होना चाहिए। परन्तु जब तक शक्ति उपलब्ध नहीं होती तब तक लोक से डरे ही रहना चाहिए॥ २८ ॥

न पापं विद्यते किंचिद् न पुण्यं किंचिद् अस्ति हि।
लोकानां चित्तरक्षायै पापपुण्यव्यवस्थितिः॥ २९ ॥

संसार में न कोई पाप है न ही कोई पुण्य है किन्तु लोक-संसार के चित्तों की रक्षा हेतु पाप पुण्यों की व्यवस्था की गई है॥ २९ ॥

चित्तमात्रं यतः सर्वं क्षणमात्रं च तत्स्थितिः।
नरकं गच्छते को ऽसौ को ऽसौ स्वर्गं प्रयाति हि॥ ३० ॥

जब सब कुछ चित्त मात्र है, और सब क्षण-स्थायी है तब कौन नरक जाता है तथा कौन स्वर्ग में निवास करता है॥ ३० ॥

यथैवातङ्कतो मृत्युं स्वसंकल्पविषप्रभवस्।
विषाभवे ऽपि संयाति तथा स्वर्गम् अधोगतिम्॥ ३१ ॥

जैसे अपने संकल्परूप विष के प्रभाव द्वारा उत्पन्न आतङ्क से अधो गति मृत्यु को प्राप्त हुआ जाता है जब उस विष का अभाव होता है वह स्वर्ग को चला जाता है। अर्थात् संकल्प ही कारक तत्त्व है॥ ३१ ॥

एवंभूतपरिज्ञानाद् निर्वाणं चाप्यते बुधैः।
निर्वाणं शून्यरूपं तु प्रदीपस्येव वाततः॥ ३२ ॥

इस प्रकार वास्तविकता को जानकर विद्वानगण निर्वाण प्राप्त करते हैं।

वह निर्वाण तो वायु के वेग से निभे हुए दीप के तरह ही वह शून्य रूप है॥ ३२ ॥

तच्छेदे च पचेत् सो ऽपि न बोधिपदम् अश्नुते।
तस्मात् सर्वं परित्यज्य माम् एवाराधयेद् व्रती॥
ददामि क्षणमात्रेण चण्डसिद्धिं न संशयः॥ ३३ ॥

उस निर्वाण के उच्छेद होने पर तो वह योगी बोधिपद को नहीं पा सकता। अतएव सब कुछ छोड़ कर मेरी ही आराधना करनी चाहिए। मैं क्षणमात्र में चण्ड सिद्धि प्रदान करती हूँ। इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ ३३ ॥

अथ भगवान् भगवतीं प्रज्ञापारमिताम् आह।

अब भगवान् चण्डरोषण ने भगवती प्रज्ञापारमिता से कहा।

किम् आकारो भवेच् चण्डस् तस्य सिद्धिम् तु कीदृशी॥ ३४ ॥

वह चण्ड किस आकार (स्वरूप) वाला है और उसकी सिद्धि किस प्रकार की है॥ ३४ ॥

भगवत्य् आह।

भगवती कहती है।

पञ्चवर्णप्रभेदेन योगिन्यो याः प्रकीर्तिताः।
तासां च स्वस्वभर्तारः पञ्चवर्णप्रभेदतः॥ ३५ ॥

पञ्चवर्णों के भेद से जो योगिनियाँ कही गई हैं, उनके अपने-अपने पाँच वर्णों के भेद से पाँच पति हैं॥ ३५ ॥

चण्डाश् च सर्व एवैते योगिन्या तु मयोदिताः।
नीलवर्णस् तु यो भर्ता स च नीलाचलः स्मृतः॥ ३६ ॥

सभी चण्ड योगिनी-मुक्त से ही प्रेरित एवं निर्मित हैं। नीलवर्ण का जो भर्ता है वह नीलाचल कहा जाता है॥ ३६ ॥

श्वेतगौरो हि यो भर्ता स श्वेताचलसंज्ञकः।
पीतवर्णो हि यो भर्ता स ख्यातः पीतकाचलः॥ ३७ ॥

श्वेत गौर जो भर्ता है वह श्वेताचल कहा गया है। पीतवर्ण का जो भर्ता है वह पीताचल है॥ ३७ ॥

रक्तगौरो हि यो भर्ता स रक्ताचल उदाहृतः।
श्यामवर्णो हि यो भर्ता स ख्यातः श्यामकाचलः॥ ३८ ॥

रक्त गौर वर्ण के भर्ता को रक्ताचल कहा गया है। श्यामवर्ण के भर्ता को श्यामाचल कहा गया है॥ ३८ ॥

एक एव भवेच् चण्डः पञ्चरूपेण संस्थितः।
एष चण्डः समाख्यतो ऽस्य सिद्धिर् दृढत्वतः॥ ३९ ॥

वे भगवान् चण्ड ही पाँच स्वरूपों में स्थित हैं। यही चण्डसिद्धि कहा गया है। इसकी सिद्धि दृढ होकर करनी चाहिए॥ ३९ ॥

यावद् आकाशपर्यन्तं दिव्यरूपेण संस्थितिः।
चण्डसिद्धिर् यथैवोक्ता तथा चण्डी प्रसिध्यति॥ ४० ॥

जब तक आकाश पर्यन्त दिव्य रूप से मेरी स्थिति रहेगी तब तक यह चण्डसिद्धि रहेगी और उसी प्रकार चण्डी की सिद्धि भी होती है॥ ४० ॥

इत्य् एकल्लवीराख्ये श्रीचण्डमहारोषणतन्त्रे स्वरूपपटलो ऽअष्टमः॥

इस प्रकार एकलवीर नामक श्री चण्डमहारोषण तन्त्र में स्वरूप नामक आठवाँ पटल समाप्त हुआ।

पटलः ६

अथ भगवत्य् आह। कथं भगवन् प्रज्ञोपाययोर् अहंकारो भावनीयः।

भगवती प्रज्ञापारमिता ने पूछा। हे भगवन्। प्रज्ञा और उपाय के द्वारा कैसे अहङ्कार की भावना करनी चाहिए।

भगवान् आह।

भगवान् कहते हैं।

योगी स्त्रीम् अग्रतः कृत्वान्योन्यदृष्टितत्परः।
ऋ जुकायं समादाय ध्यायेद् एकाग्रमानसः॥ १ ॥

योगी स्त्री को सामने रखकर एक दूसरे को देखते ही रहे और शरीर सीधा - और सरल रूप से रहे तब एकाग्र होकर वह योगी ध्यान में लगे॥ १ ॥

चतुष्कायस्वभावत्वाद् भेदो नास्ति मनाग् अपि।
विना बोधं पुनर् भेदः प्रज्ञोपाययोर् मतः॥ २ ॥

चतुष्काय स्वभाव होने से थोड़ा सा भी भेद नहीं है। बोध न होने से उन दोनों प्रज्ञा और उपायों में भेद है॥ २ ॥

मृत्युर् एवोच्यते धर्मः सम्भोगस् त्व् अन्तराभवः।
निर्माणः षड्गते रूपं कामभोगो महासुखः॥ ३ ॥

मृत्यु - धर्म ही है। सम्भोग काय अन्तराभव है। षड्गति का रूप निर्माण काय है। काम भोग महासुख है॥ ३ ॥

चतुष्कायस्वभावो ऽयं पुंरूपस् तु त्रिधातुके।
चतुष्कायस्वभावा च स्त्रीरूपा तु त्रिधातुके॥ ४ ॥

यह पुं रूप चतुष्काय स्वरूप वाला है – त्रिधातु में। साथ ही त्रिधातु में जो चतुष्काय स्वभाव है वह स्त्री रूप ही है॥ ४ ॥

पुमान् एव भवेद् बुद्धश् चतुष्कायस्वभावतः।
प्रज्ञापारमिता स्त्री च सर्वदिक्षु व्यवस्थिता॥ ५ ॥

चतुष्काय स्वभाव से पुरुष ही बुद्ध होता है। साथ ही सभी दिशाओं में प्रज्ञापारमिता ही स्त्री के रूप में व्यवस्थित है॥ ५ ॥

स त्व् इत्थं अहंकारं कुर्यात् सिद्धो ह्य् अहं पुनः।
चण्डरोषस्वरूपेण निजरूपेण संस्थितः॥ ६ ॥

उसे इसी प्रकार अहंकार की भावना करनी चाहिए तथा मैं सिद्ध हूँ साथ ही चण्डरोषण के स्वरूप में स्वयं ही हूँ यह भाव करना चाहिए॥ ६ ॥

सिद्धात्मकामिनी चण्डीरूपम् आधाय सर्वतः।
सादरं भावयेद् इत्थं दीर्घकालं तु तत्त्ववित्॥ ७ ॥

जो योगिनी सिद्धि चाहती है उसे चण्डी के रूप का ध्यान करना चाहिए – सुदीर्घ काल तक उस तत्त्वविद् को, इससे सिद्धि होती है॥ ७ ॥

सर्वकर्म परित्यज्य वामासेवैकतत्परः।
तिष्ठेत् सौख्यैकचित्तेन यावत् सिद्धिर् न लभ्यते॥ ८ ॥

अन्य सभी कर्मों को छोड़कर केवल स्त्री की सेवा में ही लगना चाहिए और चित्त को सुखपूर्वक स्थिर करे जब तक सिद्धि नहीं मिलती॥ ८ ॥

सिद्धिलब्धो यदा योगी स्वच्छाप्रतिघो भवेत्।
दृश्यते नैव लोकैस् तु वायुचित्तविजृम्भितः॥ ९ ॥

जब वह यागी सिद्धि को प्राप्त कर लेता है स्वेच्छा से सर्वत्र पहुँच सकता है उसे कोई देख नहीं सकता वायु के तरह ही उसका चित्त हो जाता है वह सर्वत्र पहुँच सकता है॥ ९ ॥

सर्वज्ञः सर्वगो व्यापी सर्वक्लेशविवर्जितः।
न रोगो न जरा तस्य मृत्युस् तस्य न विद्यते॥ १० ॥

वह योगी सभी जगह जा सकता है, तथा व्यापक, सर्वक्लेश रहित भी हो जाता है। उसे न कोई रोग, न जटा, न मृत्यु ही उसकी हो सकती है॥ १० ॥

विषं न क्रमते तस्य न जलं नापि पावकः।
न शस्त्रं शत्रुसंघास् तु सम्भवन्ति कदाचन॥ ११ ॥

उसे कोई विष बाधित नहीं कर सकता। जल उसे डुबो नहीं सकता। आग उसे जला नहीं सकता उसके शत्रु कुछ भी नहीं कर सकते तथा शस्त्र और अस्त्र भी उसको मार नहीं सकते॥ ११ ॥

मतःकाङ्क्षितमात्रेण सर्वकामसमुद्भवः।
तत्क्षणं भोति चायत्रैश् चिन्तामणिसमो भवेत्॥ १२ ॥

मन की इच्छा मात्र से वह पदार्थों को पा लेता है। तत्काल ही वह बिना किसी प्रयत्न के चिन्तामणि के समान हो जाता है॥ १२ ॥

लोकधातुसमस्तेषु यत्र यत्रैव संस्थितः।
तस्य तत्र विमानानि जायन्ते सर्वकामितैः॥ १३ ॥

समस्त लोक धातुओं में जहाँ जहाँ वह रहता है वहीं पर उसके इच्छानुरूप विमान उपलब्ध होते हैं॥ १३ ॥

तस्य दिव्यस्त्रियो रम्या रूपयौवनमण्डिताः।
भविष्यन्ति न संदेहो यावन्तः स्वर्गतारकाः॥ १४ ॥

उसके लिए दिव्य स्त्रियाँ, जो अत्यन्त रमणीय रूपों से युक्त हैं तथा नवयौवन से मण्डित हैं जो स्वर्गीय स्त्रियाँ है उसके लिए हर समय उपलब्ध होंगे॥ १४ ॥

ब्रह्मविष्णुमहेशा ये शक्रानङ्गादयः सुराः।
किंकरा भोन्ति सर्वे च प्राणिनः षड्गतिस्थिताः॥ १५ ॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, शुक्र, काम आदि सभी देव गण जो षड्गति में अवस्थित हैं, इस योगी के किंकर हो जाते हैं॥ १५ ॥

यथैव योगिनः सिद्धिर् योगिन्यास् तु तथैव हि।
नरा वज्रधराकारा योषितो वज्रयोषितः॥ १६ ॥

जिस प्रकार योगीगण सिद्ध होते हैं उसी प्रकार योगिनियाँ भी सिद्धि को प्राप्त होती हैं। वे योगीगण वज्रधार के आकार वाले हैं और योगिनियाँ वज्र स्त्री कहलाती हैं॥ १६ ॥

अथ भगवत्य् आह। कथं भगवन् देहे प्रज्ञोपाययोगेन सुखं महद् उत्पद्यते।

अब, भगवती कहती हैं। हे भगवन्! कैसे देह में प्रज्ञोपाय के योग से महान् सुख उत्पन्न होता है।

भगवन् आह।

भगवान् कहते हैं।

ललना प्रज्ञास्वभावेन वामे नाडी व्यवस्थिता।
रसना चोपायरूपेण दक्षिणे समवस्थिता॥ १७ ॥

प्रज्ञा स्वभाव से युक्त ललना नाड़ी वाम क्षेत्र में व्यवस्थित है। रसना उसी प्रकार उपाय के रूप में दक्षिण में अवस्थित है॥ १७ ॥

ललनारसनयोर् मध्ये अवधूती व्यवस्थिता।
अवधूत्यां यदा वायुः शुक्रेण समरसीकृतः॥ १८ ॥
शीरःसन्धेः पतेद् वज्ररन्ध्रेण स्त्रीभगान्तरे।
प्रज्ञोपायसमायोगाच् चण्डाली नाभिसंस्थिता॥ १९ ॥

ललना और रसना के मध्य में अवधूती व्यवस्थित होकर रहती है। जब वायु अवधूती में होता है जो शुक्र से समन्वित होता है, तब प्राण और अपान वायु के मध्य में वह वज्ररन्ध के माग्र से स्त्री भगान्तर में प्रविष्ट होता है, वह प्रज्ञोपाय समायोग से तभी चाण्डाली नाभि में अवस्थित होती है॥ १८-१९॥

दीपवज् ज्वलते तेन द्राव्यते शुक्रम् उत्तमम्।
तेनोत्पद्यते सौख्यं स्वल्पं स्वल्पप्रयोगतः॥ २० ॥

दीप के तरह वह जलता है तथा उत्तम शुक्र द्रवीभूत होता है। उसके द्वारा स्वल्प प्रयोग से ही स्वल्प सौख्य उत्पन्न होता है॥ २० ॥

तन् महच् च महायोगात् तच् च वस्तुस्वभावतः।
तत् सुखं येन बद्धं स्यान् नित्यं अभ्यासयोगतः।
स श्रीमांश् चण्डरोषः स्याद् अस्मिन्न एव हि जन्मनि॥ २१ ॥

वह महान् सुख है जो महान् योग के कारण और उसके सुख स्वभाव के कारण उत्पन्न होता है। उसी सुख से वह योगी संबद्ध होता है तथा नित्य अभ्यास योग से ऐश्वर्य सम्पन्न चण्डरोष हो जाता है इसी जन्म में, यह निःसन्देह है॥ २१ ॥

इत्य् एकल्लवीराख्ये श्रीचण्डमहारोषणतन्त्रे ध्यानपटलो नवमः॥

इस प्रकार एकल वीर नामक श्रीचण्डमहारोषण तन्त्र में ध्यान नामक नवम पटल पूर्ण हुआ।

पटलः १०

अथ भगवत्य् आह। किं भगवन् स्त्रीव्यतिरेकेणापि शक्यते साधयितुं चण्डमहारोषणपदम् उताहो न शक्यते।

अब, भगवती कहती है। हे भगवन्! क्या स्त्री रहित (अथवा स्त्री बिना भी) व्यक्ति भी साधना के द्वारा चण्डमहारोषण पद प्राप्त कर सकता है अथवा नहीं?

भगवान् आह। न शक्यते देवि।

भगवान् कहते हैं। यह संभव नहीं है।

भगवत्य् आह। किं भगवन् सुखानुदयान् न शक्यते।

भगवती ने फिर कहा। हे भगवन्! क्या सुख के उदय न होने के कारण सम्भव नहीं है? क्या यही बात है।

भगवान् आह।

भगवान् कहते हैं।

न सुखोदयमात्रेण लभ्यते बोधिर् उत्तमा।
सुखविशेषोदयाद् एव प्राप्यते सा च नान्यथा॥ १ ॥

केवल सुख के उदयमात्र से उत्तम बोधि प्राप्त नहीं हो सकती, किन्तु सुख विशेष के उदय से ही वह प्राप्त होती है। अन्यथा नहीं॥ १ ॥

तच् च कार्यं विना नैव कारणेनैव जायते।
कारणं च स्त्रिया योगो न चान्यो हि कदाचन॥ २ ॥

वह कार्य के बिना कारण के नहीं हो सकता। केवल कारण से ही संभव है। उसमें कारण है - स्त्री का संयोग, और कोई कारण नहीं है॥ २ ॥

सर्वासाम् एव मायानां स्त्रीमायैव प्रशस्यते।
ताम् एवातिक्रमेद् यो ऽसौ न सिद्धिं सो ऽधिगच्छति॥ ३ ॥

सभी मायाओं में स्त्री रूपी माया ही श्रेष्ठ और प्रशंसा योग्य है। जो इसका अतिक्रमण करता है वह सिद्धि को नहीं पा सकता है॥ ३ ॥

तस्मान् न स्त्रीवियोगो ऽयं कर्तव्यस् तु कदाचन।
एवं यदि भवेद् दुःखं मृत्युर् वा बन्धनं भयम्॥ ४ ॥

इसीलिए स्त्रीवियुक्त होकर यह योग नहीं करना चाहिए। यदि कोई स्त्री रहित होकर करता है तो उसकी मृत्यु या बन्धन तथा भय का उत्पादन होता है॥ ४ ॥

सह्यं तत् सर्वम् एवेदं स्त्रियं नैव तु संत्यजेत्।
यस्माद् एव स्त्रियः सर्वाः सुखैर् बुद्धत्वप्रापिकाः॥ ५ ॥

अन्य जो भी कठिनाइयाँ हो उनका सहन करें। किन्तु स्त्री का सहयोग कभी नहीं त्यागना चाहिए। क्योंकि सभी स्त्रियाँ सुखपूर्वक बुद्धत्व की प्रापिकायें हैं॥ ५ ॥

निर्लज्जाश् चञ्चला धृष्टा नित्यं कामपरायणाः।
सिद्धिम् एता ददन्त्य् एव सर्वभावेन सेविताः॥ ६ ॥

भले ही वे स्त्रियाँ निर्लज्ज हों, चञ्चल, धृष्ट और निरन्तर कामना में संलग्न ही क्यों न हो, सर्वभाव द्वारा सेवित होने पर वे सिद्धियाँ अवश्य ही देती हैं॥ ६ ॥

स्त्रीणाम् रूपं तु किं वा%यं म्रियन्ते चापि प्रेमतः।
पतेर् एव वियोगेन किं वक्तव्यं अतः परम्॥ ७ ॥

स्त्रियों के वास्तविक स्वरूप का तो क्या कहना है!! वे तो अपने पतियों के वियाग जन्य प्रेम से ही मरा करती हैं। इससे ज्यादा क्या अ%छाई हो सकती है॥ ७ ॥

तस्मात् सर्वाः स्त्रियो देव्यः सर्वथैव प्रकल्पयेत्।
मनसः कल्पिताश् चापि काष्ठपाषाणकादिभिः॥ ८ ॥
स्त्रीणां च पुमान् देवो देवता स्त्री नरस्य हि।
अन्योन्यं भवेत् पूजा वज्रपद्मप्रयोगतः॥ ९ ॥

इसीलिए सभी स्त्रियों को सर्वदा देवी के रूप में ही देखना चाहिए। क्योंकि मन से कल्पना करके काठ, पत्थर, मिट्टी आदि को हम देवता का दर्जा देते हैं और स्त्रियों के लिए पुरुष देवता हैं तथा पुरुषों के लिए स्त्री देवता है। अन्योन्य - एक दूसरे की पूजा तो प्रत्यक्ष ही पद्म और वज्र के प्रयोग में तो होती ही है॥ ८-९॥

नान्यं पूजयेद् देवं साधिष्ठानम् अपि स्वयम्।
तस्माद् योगी कृपाविष्टो मण्डलीकृत्य-म्-अग्रतः॥ १० ॥
उपवेश्य स्त्रियं तत्र प्रज्ञापारमिताकृतिम्।
पुष्पेणाभ्यर्चयेन् नित्यं दीपधूपादिभिस् तथा॥ ११ ॥
पश्चाद् वन्दनां कुर्यात् पञ्चमण्डलयोगतः।
ततः प्रदक्षिणं कुर्याच् चण्डीपूजा कृता भवेत्॥ १२ ॥

अधिष्ठान पूर्वक स्थापित होते हुए भी योगी अन्य किसी की भी पूजा न करें। इसीलिए उसे भक्तिभाव पूर्वक मण्डल बनाकर, अपने सामने ही स्त्री को रखे और वह स्त्री प्रज्ञापारमिता की प्रतिमूर्ति है यह समझपूर्वक पुष्प, धूप दीप आदि से उसकी पूजा करें। बाद में वन्दना करें पञ्चमण्डल निर्मित पूर्वक प्रदक्षिणा करे। यही चण्डीपूजा कहलाती है॥ १०-१२ ॥

स्त्री पूजयेत् पुरुषं सादरं भक्तिचेतसा।
कुर्याद् एवंविधां पूजाम् अन्योन्यं चोक्तं जिनैः॥ १३ ॥

स्त्री भी भक्तिपूर्वक एवं आदर के साथ पुरुष की पूजा करें। इस प्रकार की पूजा एक दूसरे को करना चाहिए ऐसा ही भगवान् तथागत ने कहा है॥ १३ ॥

निन्दयेच् च स्त्रियं नैव प्रार्थिते परिहरेन् न च।
वक्तव्यं मधुरं वाक्यं दातव्यं चानुरूपतः॥ १४ ॥

स्त्रियों की कभी भी निन्दा नहीं करनी चाहिए और उनका अपमान नहीं करना चाहिए। सर्वदा मधुर वाक्य ही बोलना चाहिए उनको उनकी आवश्यकता के अनुरूप देना भी चाहिए॥ १४ ॥

वन्दयेत् सर्वभावेन यथा दुष्टो न बुध्यते।
त्यजेन् नैव स्त्रियं क्वापि श्रुत्वेदं बुद्धभाषितम्॥ १५ ॥

उत्तम भाव से उनकी वन्दना करनी चाहिए। किन्तु दुष्ट व्यक्ति इसे जान न पाये। स्त्री को कभी भी कहीं भी न छोड़े। यह बुद्ध ने कहा है॥ १५ ॥

अन्यथात्वं करेद् यस् तु स पापी नरकं अश्नुते।
मरणम् अप्य् अन्यथा सिद्धं स्त्रीवियोगेन किं कृतम्॥ १६॥

इसके विपरीत जो करता है वह पापी नर को जाता है। और उसका मरण तो अन्यथा सिद्ध है और स्त्री वियोग से वह सदा जन्मान्तर में दुःखित होता है॥ १६ ॥

तपसा सिध्यते नैव चण्डरोषणसाधनम्।
निष्फलं मोहजालेन बाध्यते निर्मलं मनः॥ १७ ॥

तपस्या से चण्डरोषण साधना पूरी नहीं होती। वह सब निष्फल होता है और मोह जाल से निर्मल मन बाधित हो जाता है॥ १७ ॥

कामं न वर्जयेत् कामी मिथ्याजीवस् तु जायते।
मिथ्यया जीवनात् पापं पापात् तु नरके गतिः॥ १८ ॥

कामी को कभी भी काम का त्याग नहीं करना चाहिए। यदि ऐसा करता है तो वह मिथ्या जीव कहलाता है। मिथ्या जीवन से पाप और पाप से नरक की गति होती है॥ १८ ॥

लभते अन्तकालं तु मिथ्याजीवी न संशयः।
अत एव साध्यते सिद्धिः कामेनैव जिनात्मजैः॥ १९ ॥

अन्तिम काल में नरक एवं दुःख की स्थिति वह प्राप्त करता है। इसीलिए सिद्धि की जातीहै काम-सेवनपूर्वक जिनात्मज-बोधिसत्त्वों के द्वारा॥ १९ ॥

पञ्चकामांस् तथा त्यक्त्वा तपसात्मानं न पीडयेत्।
रूपं पश्येद् यथालब्धं शृणुयाच् छब्दम् एव च॥ २० ॥

पञ्चकामों को छोड़कर तप द्वारा अपने को पीड़ित न करें। यथालब्ध रूप को देखें, उत्तम शब्द को सुने॥ २० ॥

गन्धस्य जिघ्रणं कुर्याद् भक्षयेद् रसम् उत्तमम्।
स्पर्शस्य स्पर्शनं कुर्यात् पञ्चकामोपसेवनम्॥ २१ ॥

गन्ध का जिघ्रण करें। उत्तम रस का सेवन करें। स्पर्श का स्पर्श करें। यही पञ्चकामों का सेवन कहा गया है॥ २१ ॥

भवेच् छीघ्रतरं बुद्धश् चण्डरोषैकतत्परः।
नातः परं वञ्चनास्ति न च मोहो ऽप्य् अतः परम्॥ २२ ॥

इस प्रकार शीघ्र ही वह बुद्ध हो जाता है – चण्डरोषण के ध्यानपूर्वक इससे ज्यादा कोई वञ्चना नहीं है और मोह भी इससे बड़ा नहीं है॥ २२ ॥

मानुष्यं यौवनं सर्वं स्त्रीसुखं नोपभोगितम्।
निष्फलं वापि दृश्यं ते व्ययं कृत्वा महत्तरम्॥ २३ ॥

मनुष्यों का जीवन, और समग्र यौवन भी व्यर्थ ही है यदि स्त्री सुख का उपभाग न किया हो तो। बहुत बड़ा चीज व्यय हो गया किन्तु कोई उपलब्धि नहीं हुई॥ २३ ॥

सेवन्ति कामिनीं नित्यं काममात्रपरायणाः।
चण्डरोषपदं दृष्ट्वा योषिद्योनिसमाश्रितम्॥ २४ ॥

काम मात्र में संलग्न होकर जो नित्य कामिनी का सेवन करते हैं वे तत्काल ही स्त्री योनि से समन्वित चण्डरोषण पद को प्राप्त कर लेते हैं॥ २४ ॥

त्यक्त्वा यान्ति कथं निद्रां भोजनं हास्यम् एव च।
लोककौकृत्यनाशार्थं मायादेवीसुतः सुधीः॥ २५ ॥
चतुरशीतिसहस्त्राणि त्यक्त्वा चान्तःपुरं पुनः।
गत्वा निरञ्जनातीरं बुद्धसिद्धिप्रकाशकः॥ २६ ॥
यातो मारान् निराकृत्य न चैवं परमार्थतः।
यस्माद् अन्तःपुरे बुद्धः सिद्धो गोपान्वितः सुखी॥ २७ ॥

वे लोग स्त्री को छोड़कर कैसे निद्रा, भोजन, हास्य कैसे कर सकते हैं। इसी प्रसङ्ग में लोककृत्य के नाश के लिए मायादेवी के पुत्र, बुद्धिमान् बोधिसत्त्व ने ८४ हजार स्त्रियों को छोड़कर अन्तपुर में ही, नेरञ्जनातीर जाकर बुद्धि के सिद्धि के प्रकाशक, मार सेना को पराजित करके किन्तु पारमार्थिक रूप से नहीं, क्योंकि अन्तःपुर में वे स्त्रियों के साथ रहकर ही सिद्ध और सुखी हुए थे – गोपाओं के साथ॥ २५–२७ ॥

वज्रपद्मसमायोगात् सत्सुखं लभ्यते यतः।
सुखेन प्राप्यते बोधिः सुखं न स्त्रीवियगतः॥ २८ ॥

वज्र और पद्म के समायोग से जो सुख प्राप्त होता है, क्योंकि सुख-पूर्वक बोधि वहाँ उपलब्ध होती है, वही स्त्री के वियोग से कदापि नहीं होती॥ २८ ॥

वियोगः क्रियते यस् तु लोककौकृत्यमहानये।
येन येनैव ते लोका यान्ति बुद्धविनेयताम्॥ २९ ॥

जिसको वियुक्त किया जाता है - लौकिक कृत्य के निराकरण के लिए, उसी मार्ग से वे लोग बुद्ध के गण के सदस्य के रूप में - शिष्य - विनेय हो जाते हैं॥ २९ ॥

तेन तेनैव रूपेण मायावी नृत्यते जिनः।
सर्वसूत्राभिधर्मेण कृत्वा निन्दां तु योषिताम्॥ ३० ॥
नानाशिक्षापदं भाषेत् तत्त्वगोपनभाषया।
निर्वाण दर्शयेच् चापि पञ्चस्कन्धविनाशतः॥ ३१ ॥

उसी रूप से मायावी के रूप में जिन देखते हैं। सभी अभिधर्म सूत्रों से स्त्रियों की निन्दा करने के व्याज से (वास्तविक स्त्री की निन्दा नहीं, देखा वही मात्र है), अनेक शिक्षापदों में तत्त्वों के गोपन की भाषा से वे बोलते हैं तथा पञ्च स्कन्धों के विनाशपूर्वक निर्वाण की देशना करते हैं॥ ३०-३१ ॥

अथ भगवती प्रज्ञापारमिताह। को भगवन् मायादेवीसुतः का च गोपा।

अब, भगवती प्रज्ञापारमिता ने कहा। हे भगवन्! माया देवी के पुत्र कौन हैं तथा यह गोपा कौन है।

भगवान् आह।

भगवान् ने कहा।

मायादेवीसुतश् चाहं चण्डरोषणतां गतः।
त्वम् एव भगवती गोपा प्रज्ञापारमितात्मिका॥ ३२ ॥

माया देवी का पुत्र मैं ही हूँ जो चण्डरोषण के रूप में हूँ। गोपा तुम ही हो जो प्रज्ञापारमिता के रूप में परिणत हुई हो॥ ३२ ॥

यावन्तस् तु स्त्रियः सर्वांश् त्वद्रूपेणैव ता मताः।
मद्रूपेण च पुंसस् तु सर्व एव प्रकीर्तिताः।
द्विधाभावगतं चैतत् प्रज्ञोपायात्मकं जगत्॥ ३३ ॥

जितनी भी स्त्रियाँ जगत् में हैं वे सभी आप के रूप ही हैं और संसार के सभी पुरुष मेरे ही रूप हैं यह प्रसिद्ध ही है। यह सारा जगत् स्त्री और पुरुष के रूप में बँटा है। जिसे हम प्रज्ञा और उपाय के रूप में जानते हैं॥ ३३ ॥

अथ भगवत्य् आह। कथं भगवन् श्रावकादयो हि स्त्रियं दूषयन्ति।

अब भगवती कहती है। हे भगवन्! कैसे श्रावक आदि स्त्रियों का दूषण करते हैं।

भगवान् आह।

भगवान् कहते हैं।

कामधातुस्थिताः सर्वे ख्याता ये श्रावकादयः।
मोक्षमार्गं न जानन्ति स्त्रियं पश्यन्ति सर्वदा॥ ३४ ॥

कामधातु में अवस्थित प्रसिद्ध श्रावक आदि मोक्षमार्ग को न जानकर सर्वदा स्त्रियों को ही देखते हैं॥ ३४ ॥

संनिधानं भवेद् यत्र सुलभं कुङ्कुमादिकम्।
न तत्रार्घं समाप्नोति दूरस्थस्य महार्घता॥ ३५ ॥

यदि कहीं कुङ्कुम आदि द्रव्य नजदीक हैं और सुलभ भी हैं किन्तु यदि वही दूर हो तो वह उपलब्ध नहीं होता है और वह महँगा हो जाता है॥ ३५ ॥

अनाद्यगानयोगेन श्रद्धाहीनास् त्व् अमी जनाः।
चित्तं न कुर्वते तत्त्वे मयाप्य् एतत् प्रगोपितम्॥ ३६ ॥

अनादि कालिक अज्ञान के कारण वे व्यक्तियाँ श्रद्धा विहीन हो जाते हैं। और तत्त्वों के प्रति चित्त को एकाग्र नहीं करते। साथ ही मैंने ही इसे गोप्य भी बनाया है॥ ३६ ॥

तथाप्य् अत्र कलौ काले कोटिमध्ये ऽथ कश्चित्।
एकैकसंख्यातः सत्त्वः श्रद्धायत्रपरायणः।
तस्यार्थे भाशितं सर्वं शीघ्रबोधिप्रसिद्धये॥ ३७ ॥

और भी इस कलिकाल में कटि व्यक्तियों के मध्य में एकाध कोई श्रद्धा भक्ति युक्त होकर उस तत्त्व को प्राप्त करने के लिए लग जाता है। उसी के लिए, शीघ्र बोधि प्राप्त करने के लिए यह सब मैंने कहा है॥ ३७ ॥

इत्य् एकल्लवीराख्ये श्रीचण्डमहारोषणतन्त्रे स्त्रीप्रशंसापटलो दशमः॥

इस प्रकार एकल वीर नामक श्रीचण्डमहारोषण तन्त्र में स्त्री प्रशंसा नामक दशवाँ पटल पूर्ण हुआ।

पटलः ११

अथ भगवत्य् आह। किं त्वं भगवन् सरागो ऽसि-
वीतरागो वा।

अब भगवती कहती है। हे भगवन्! आप सराग हैं अथवा वीतराग हैं।

भगवान् आह।

भगवान् कहते हैं।

सर्वो ऽहं सर्वव्यापी च सर्वकृत् सर्वनाशकः।
सर्वरूपधरो बुद्धः कर्ता हर्ता प्रभुः सुखी॥ १ ॥

मैं सर्व हूँ। सर्वव्यापी हूँ। सर्वकृत् हूँ। सर्वनाशक हूँ। सर्वरूपधर हूँ। बुद्ध हूँ। कर्ता, हर्ता, प्रभु और सुमी भी हूँ॥ १ ॥

येन येनैव रूपेण सत्त्वा यान्ति विनेयताम्।
तेन तेनैव रूपेण स्थितो ऽहं लोकहेतवे॥ २ ॥

जिस-जिस रूप से सत्त्व गण विनेय (शिष्य) होते हैं। मैं उनके हित कामना से उसी के अनुरूप हो जाता हूँ॥ २ ॥

क्वचिद् बुद्धः क्वचित् सिद्धः क्वचिद् धर्मो ऽथ संघकः।
क्वचित् प्रेतः क्वचित् तिर्यक् क्वचिन् नारकरूपकः॥ ३ ॥
क्वचिद् देवो ऽसुरश् चैव क्वचिन् मानुषरूपकः।
क्वचित् स्थावररूपो ऽहं विश्वरूपी न संशयः॥ ४ ॥
अहं स्त्री पुरुषश् चापि नपुंसकरूपः क्वचित्।
क्वचिद् रागी क्वचिद् द्वेषी क्वचिन् मोही शुचिः क्वचित्॥ ५ ॥
क्वचिच् चाशुचिरूपो ऽहं चित्तरूपेण संस्थितः।
मदीयं दृश्यते चित्तम् अन्यत् किंचिन् न विद्यते॥ ६ ॥

कहीं बुद्ध, कहीं सिद्ध, कहीं धर्म और कहीं संघ, कहीं प्रेत, कहीं

पशु, कहीं नारकीय जीव, कहीं देवता, कहीं असुर कहीं, मनुष्य, कहीं स्थावर, कहीं विश्वरूप हो जाता हूँ – इसमें सन्देह नहीं है।

मैं स्त्री हो जाता हूँ, पुरुष भी, नपुंसक भी, कहीं रागी, कहीं द्वेषी, कहीं मोही, कहीं शुचि और कहीं अशुचि रूप में रहता हूँ और मैं केवल चित्तमात्र के रूप में रहता हूँ। यह सारा जगत् मेरा ही चित्त है उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है॥ ३–६॥

वस्त्ववस्तुप्रभेदो ऽहं जन्यो ऽहं जनको ऽपि हि।
विघ्नो ऽहम् अहं सिद्धिः सर्वरूपेण संस्थितः॥ ७ ॥

वस्तु और अवस्तु का भेद भी मैं ही हूँ। जन्य और जनक भी मैं हूँ। विघ्न मैं हूँ तथा सिद्धि भी मैं हूँ जो सभी रूपों में स्थित है॥ ७ ॥

अहं जातिर् अहं मृत्युर् अहं व्याधिर् जराप्य् अहम्।
अहं पुण्यं अहं पापं तत्कर्मफलं त्व् अहम्॥ ८ ॥

मैं जाति, मृत्यु, व्याधि, जरा, पुण्य, पाप और उनके फल भी मैं ही हूँ॥ ८ ॥

जगद् बुद्धमयं सर्वम् इदं रूपं ममैव च।
ज्ञातव्यं समरसाकारैर् योगिना तत्त्वचिन्तया॥ ९ ॥

सारा जगत् बुद्ध मय है। यह रूप मेरा ही है। तत्त्व चिन्तक योगी को समरसरूप में मुझे जानना चाहिए॥ ९ ॥

अथ भगवत्य् आह। किं भगवंस् तवैवेदं रूपम्।

भगवान् आह।

तवाप्य् एवंविधं रूपं यथा सर्वं विभाषितम्।
त्वया व्याप्तम् इदं सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम्॥ १० ॥

अब भगवती कहती है। हे भगवन्! क्या यह सब आपका ही रूप है। भगवान् ने कहा। आप का भी यह सब रूप है। ज़ो मैंने कहा है। यह सारा स्थावर एवं जङ्गम आपने ही व्याप्त किया है॥ १० ॥

इत्य् एकल्लवीराख्ये श्रीचण्डमहारोषणतन्त्रे विश्वपटल एकादशः॥

इस प्रकार एकलवीर नामक श्री चण्डरोषण तन्त्र में
ग्यारवाँ विश्व पटल समाप्त हुआ।

पटलः १२

अथ भगवत्य् आह।

भगवती कहती है।

मन्त्राणां साधनं ब्रूहि शान्तिकं पौष्टिकं तथा।
वश्याकृष्टिप्रयागं च मारणोच्चाटनादिकम्॥ १ ॥

हे भगवन्! आप मुझे मन्त्रों के प्रयोगों के विषय में बतायें। वशिता, आकर्षण, मारण एवं उच्चाटन, शान्ति तथा पुष्टि हेतु किस प्रकार इन मन्त्रों का प्रयोग किया जाता है॥ १ ॥

विषनाशं व्याधिनाशं वह्निखड्गादिस्तम्भनम्।
संग्रामे विजयं चापि पाण्डित्यम् अथोत्तमम्॥ २ ॥
यक्षिणीसाधनं चेटं दूतभूतादिसाधनम्।
सामर्थ्यम् अनेकविज्ञानं निश्चितं मे वद प्रभो॥ ३ ॥

विष का नाश, व्याधिनाश, आग, खड्ग आदि का स्तम्भन, संग्राम में विजय, उत्तम पाण्डित्य की प्राप्ति, यक्षिणी साधना, चेट साधना, दूत साधना, भूत-प्रेत आदि की साधना और अनेक प्रकार का सामर्थ्य, जो निश्चित ज्ञान में आधारित हो, कृपया आप मुझे बतायें॥ २-३॥

अथ भगवान् आह।

भगवान् कहते हैं।

चण्डरोषणसमाधिस्थो मन्त्रसाधनम् आरभेत्।
प्रथमं साधयेत् सार्धदशवर्णात्मकं हृदम्॥ ४ ॥
मूलमन्त्रम् इति ख्यातं सर्वमन्त्रप्रसाधकम्।
लिखितं तिष्ठते यत्र तत्र स्वस्ति भवेत् पुनः॥ ५ ॥

धारयेद् वाचयेद् यस् तु तस्य पापं समूलितम्।
स्मरणाद् एवास्य मन्त्रस्य मारा यान्ति दिशो दश।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन मन्त्रम् एतत् प्रसाधयेत्॥ ६ ॥

चण्ड रोषण समाधि में स्थित होकर मन्त्र की साधना प्रारंभ करनी चाहिए। सबसे पहले साढे दश वर्णों वाला मन्त्र हृदय में रखें।

इसे ही मूल मन्त्र कहते हैं, यही सभी मन्त्रों का साधक भी है। जहाँ यह मन्त्र लिखकर रखा जाता है वहाँ कल्याण होता है। जो इस मन्त्र का धारण, वाचन करता है उसके पाप समूल नष्ट होते हैं। इस मन्त्र के स्मरण मात्र से मारगण दशों दिशाओं में भाग जाते हैं। अतः प्रयत्न पूर्वक इस मन्त्र का साधन करना चाहिए॥ ४-६ ॥

अथ तस्मिन् क्षणे सर्वभूतप्रेतव्याडयक्षकुम्भाण्डमहोरगादयो दुष्टसत्त्वाः प्रपलायिताः, सर्वव्याधयो भीताः, सर्वे च ग्रहादयो दह्यन्ते, मन्त्ररश्मिप्रभावतः सर्वाश् च सिद्धयो ऽभिमुखीभूताः॥ ७ ॥

अब उस क्षण में सभी भूत, प्रेत, व्याड, यक्ष, कुम्भ, अण्ड, महोरग आदि दुष्ट सत्त्वगण भाग गए। सभी व्याधियाँ भाग गई, सभी ग्रह आदि जल जाते हैं। मन्त्र रश्मियों के प्रभाव से सभी सिद्धियाँ अभिमुखी हुई॥ ७ ॥

अथास्य साधनं भवति। लक्षं जपेत्। पूर्वसेवा कृता भवेत्। ततः कृष्णप्रतिपदम् आरभ्य प्रतिदिनं त्रिसन्ध्यं जपेद् यावत् पौर्डमासीम्। ततो ऽन्ते सकलां रात्रिं जपेन् महतीं पूजां कृत्वा सन्ध्यातः प्रभृति यावत् सूर्योदयम्। ततो ऽयं मन्त्रः सिद्धो भवति। ततः प्रभृति सर्वकर्माणि करोति॥ ८ ॥

इसकी साधना यह है। एक लाख जपना चाहिए। पहले की सेवा भी करनी चाहिए। कृष्णपक्ष के प्रतिपदा से लेकर प्रतिदिन तीनों सन्ध्याओं में जप करे - पूर्णमासी तक। फिर, भक्ति में पूरी रात्रि जपपूर्वक बड़ी पूजा करके सायं काल से लेकर सूर्योदय तक। इस प्रकार यह मन्त्र सिद्ध होता है। उसके बाद सभी कर्म करने चाहिए॥ ८ ॥

अथ भगवतः साधनं भवति। पटे भगवन्तं लिखापयेत्। पूर्ववच् चतुरस्रमण्डलमध्ये दशात्मकं यथाधिमोक्षतः। तस्याग्रतः कृष्णप्रतिपदम्

आरभ्य त्रिसन्ध्यं सहस्त्रम् एकैकं जपेत्। ततो ऽन्ते पौर्ड्मास्यां यथाविभवतः पूजां कृत्वा सन्ध्याकालात् प्रभृति सूर्योदयं यावत्। ततो भयान्य उतपद्यन्ते। न भेतव्यम्। त्वरितत्वरितं जपेत्। ततो भगवान् स्वयम् एवागच्छति। ततो ऽर्घं तस्य पादयोर् दत्त्वा पतित्वा स्थातव्यम्॥ ९ ॥

बैठकर कृष्णपक्ष के प्रतिपदा से आरंभ करके तीनों सन्ध्याओं में एक हजार एक बार जाप करें। अन्तिम में पूर्णिमा को यथा नियम पूजा करके सन्ध्याकाल से लेकर सूर्योदय तक जाप करना चाहिए। फिर भय उत्पन्न होते हैं। डरना नहीं चाहिए। जल्दी जल्दी जपना चाहिए। उसके बाद भगवान् स्वयं आ जाते हैं। फिर उनके पैरों में अर्घ्य देकर स्वयं पैरों पर गिरकर रहना चाहिए॥ ९ ॥

ततो भगवान् आह। भो ते किं वरम् ददामीति। साधकेन वक्तव्यम्। बुद्धत्वं मे देहीति। ततो भगवांस् तस्य शरीरे प्रविशति। प्रविष्टमात्रे द्विरष्टवर्षाकृतिः षडभिज्ञस् त्रयोदशभूमीश्वरो दिव्यविमानचारी शतसहस्त्राप्सरोगणमण्डितः कामरूपी सर्वज्ञो भगवत्सदृशो भवति॥ १०॥

अब भगवान् कहते हैं। हे साधक! तुम्हें क्या वरदान दूँ। साधक कहता है। मुझे बुद्धत्व दें। फिर भगवान् उसके शरीर में प्रविष्ट होते हैं। भगवान् के द्वारा उसके शरीर में प्रवेश करते ही १६ वर्षों वाला, षड् अभिज्ञ १३ भूमीश्वर, दिव्य विमानचारी, हजारों अप्सराओं से परिवृत, कामरूपी, सर्वज्ञ और भगवान् के तरह ही हो जाता है॥ १० ॥

अथवा खड्गाञ्जनगुलिकापादुकापादलेपराज्यकामभोगैश्वर्य-विद्याधकवित्व- पाण्डित्ययक्षयक्षिणीरसस्पर्शधातुवादादिकं यथाभिमतं प्रार्थयेत्। तत् सर्वं भगवान् ददाति॥ ११ ॥

अथवा वह साधक खड्ग, अञ्जन, गोली, पादुका, लेप, राज्य ऐश्वर्य, विद्या, धन, कवित्व, पाण्डित्य, यक्ष-यक्षिणी-रस स्पर्श, धातुवाद आदि जो भी चाहे मॉग सकता है। भगवान् उसे वह सब कुछ देते हैं॥ ११ ॥

अथवा पट एकल्लवीरं लिखापयित्वा पूर्ववत् साधयेत्। अत्रैकल्लवीरपटे कृष्णाचलो द्वेषवज्र्यालिङ्गितः, श्वेताचलो मोहवज्र्या, पीताचलः पिशुनवज्र्या, रक्ताचलो रागवज्र्या, श्यामाचल

ईर्ष्यावज्र्यालिङ्गितो लिखापयितव्यः। अथवा प्रज्ञारहितः केवलो भगवान् कार्यः॥ १२ ॥

अथवा कपड़े में एकलवीर को लिखवाकर पहले बताए हुए विधि के अनुसार साधना करें। यहाँ एकलवीर के पट में कृष्णाचल को द्वेष वज्री से आलिङ्गित, श्वेताचल को मोहवज्री से आलिङ्गित, पीताचल को पिशुनवज्री के साथ आलिङ्गित, रक्ताचल को रागवज्री के साथ आलिङ्गित और श्यामाचल को ईर्ष्यावज्री के साथ आलिङ्गित हुआ चित्र बनाना चाहिए। अथवा प्रज्ञारहित केवल भगवान् का ही चित्र बनायें॥ १२ ॥

अथवा भगवती पञ्चानां मध्य एका कार्या। तत आत्मानं तस्याः परिरूपेण ध्यात्वा पूर्ववत् साधनीया। अथवा स्वस्त्रियं देवीरूपेण ध्यात्वा साधयेत्। सिद्धा सती बुद्धत्वम् अपि ददाति किं पुनर् अन्याः सिद्धीः ॥ १३ ॥

अथवा पाँच देवियों में से एक का चित्र बनायें। फिर अपने को उनके पति के रूप में ध्यान करके पहले के तरह ही साधना करनी चाहिए। अथवा अपने ही स्त्री को देवी के रूप में ध्यान करके साधना करनी चाहिए। वह सिद्ध होने पर बुद्धत्व भी देती है। और सिद्धियाँ तो देती ही है॥ १३ ॥

अथवा प्रत्यालीढपदं खड्गपाशधरं साधयेत्। अथवा सत्त्वपर्यङ्किणं खड्गपाशकराभ्यां क्रोडीकृतस्वाभप्रज्ञं साधयेत् सहजचण्डमहारोषणम्। पूर्ववत् सिद्धिम्। एवं भगवतः पटसिद्धिः। अथवा दार्वादिकृतप्रतिमासाधनम् अप्य् एवम् एव कर्तव्यम्॥ १४ ॥

अथवा प्रत्यालीढ जो खड्ग और पाश को धारण करते हैं उनकी साधना करें। अथवा सत्त्वपर्यङ्की की साधना करें जो दो हाथों में खड्ग और पाश धारण करते हैं, प्रज्ञा को अपने गोद में रखे हुए हैं - वे सहज चण्ड महारोषण हैं। सिद्धि पहले के ही तरह हैं। इस प्रकार भगवान् की पटसिद्धि होती है अथवा लकड़ी से निर्मित प्रतिमा की साधना भी कर सकते हैं॥ १४ ॥

अथ खड्गसाधने मनस् तदा पुष्ये जातिलोहमयं सारं च काष्ठमयं वा यथाभिमतं पञ्चगव्येन प्रक्षाल्य सवगन्धैः समालभ्य पूर्ववद् द्वाभ्यां

कराभ्यां परिगृह्य त्रिसन्ध्यं मासम् एकं जपेत्। मासान्ते महतीं पूजां कृत्वा सकलां रात्रिं जपेत्। प्रभाते जवलितः। खड्गविद्याधरो भवति द्विरष्ट-वर्षाकृतिर् आकुञ्चितकुण्डलकेशः। आसंसारं पञ्चकामैर् विलसति॥ १५॥

अथवा यदि खड्ग साधना में मन लगता है तो उसे पुष्य नक्षत्र में लोहा से निर्मित मूर्ति अथवा काठ से निर्मित, प्रतिमा को पञ्च गव्य से प्रक्षालन करके सभी गन्धों से युक्त करके पहले के तरह दोनों हाथों से ग्रहण करके तीनों सन्ध्याओं में एक महीने तक जप करें। महीने के अन्त में बड़ी पूजा करके पूरी रात्रि को जाप करें। प्रातः काल वह खड्ग विद्याधर हो जाता है। तेजस्वी होता है। १६ वर्ष का दिखता है और अच्छे वालों से सुशोभित होकर पूरे संसार में पञ्च कामों के साथ विलास करता है॥ १५ ॥

एवं वज्रचक्रत्रिशूलादीन् साधयेत्। एवं ताम्रादिमयं पाशं साधयेत्। एवं पटपादुकयज्ञोपवीतवस्त्रच्छत्रं च प्रज्ञापारमितापुस्तकतन्त्रपुस्तकादीन् साधयेत्। एवं पटहमर्दलवीणादीन् साधयेत्। एवं सौवर्णमयं यक्षं जम्भलमाणिभद्रपूर्णभद्रचिबिकुण्डलिप्रभृतीन् साधयेत्। सर्व आज्ञां सम्पादयन्ति॥ १६॥

एवं वज्रचक्रत्रिशूलादीन् साधयेत्। एवं ताम्रादिमयं पाशं साधयेत्। एवं पटपादुकयज्ञोपवीतवस्त्रच्छत्रं च प्रज्ञापारमितापुस्तकतन्त्रपुस्तकादीन् साधयेत्। एवं पटहमर्दलवीणादीन् साधयेत्। एवं सौवर्णमयं यक्षं जम्भलमाणिभद्रपूर्णभद्रचिबिकुण्डलिप्रभृतीन् साधयेत्। सर्व आज्ञां सम्पादयन्ति॥ १६ ॥

एवं वेणुमयं गन्धर्वं साधयेत्, वाल्मीकमृण्मयं गरुडं, देवदारुमयान् देवान् ब्रह्मविष्णुमहेश्वरेन्द्रकामदेवादीन्, श्मशानाङ्गारलिखितं राक्षसं, दग्धगडमत्स्यक्षारलिखितं प्रेतं, मदनमयं मनुष्यं, हस्तिदन्तमयं गणपतिं, शाखोटककाष्ठमयं पीलुपालादिपिशाचं, प्रवालमत्स्यक्षारलिखितं गौरीचौर्यादिडाकिनीं, मनुष्यास्थिमयं रामदेवकामदेवादिवेतालं, नागकेशर-काष्ठमयं वासुक्यादिनागं नागिनीं च, अशोककाष्ठमयां हारीती-सुरसुन्दरी-नट्टा-रतिप्रिया-श्यामा-नटी-पद्मिनी-अनुरागिनी-चन्द्रकान्ता-ब्रह्मदुहिता-वधू-कामेश्वरी-रेवती-आलोकिनी-नरवीरा-आदियक्षिणीं साधयेत्॥१७॥

और भी वेणुमय गन्धर्व की साधना करें। वल्मीक मिट्टी से संयुक्त गरुड, देवदारु से निर्मित देवता, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, इन्द्र, कामदेव, श्मशान अङ्गारों से लिखित राक्षस, जले हुए पदार्थों के मसी से लिखा प्रेत, मदनमय मनुष्य, हाथी के दाँतों से निर्मित गणपति, शाखोदक काठ से निर्मित - पिशाच, प्रवाल मत्स्य आदि से लिखित गौरी चौरी आदि डाकिनी, मनुष्यों के हड्डियों से निर्मित रामदेव, कामदेव और वेताल, नाग केशर काठ से निर्मित वासुकि आदि नाग और नागिनियाँ, अशोक काठ से निर्मित हारिती, सुरसुन्दरी, नट्टारति-प्रिया, श्यामा नटी, पद्मिनी अनुरागिनी, चन्द्रकान्ता, ब्रह्मदुहिता, वधू कामेश्वरी, रेवती, आलोकिनी, नरवीरा आदि यक्षिणियों की सिद्धि करें॥ १७ ॥

वटकाष्ठमयीं श्रीदेवीं राजानं च देवदारुमयं तिलोत्तमा-शशिदेवी-काञ्चनमाला-कुण्डलहारिणी-रत्नमाला-आरम्भा-उर्वशी-श्रीभूषणी-रती-शची-आद्यप्सरोगणं साधयेत्। एवं सूर्यं चन्द्रं मङ्गलं बुधं बृहस्पतिं शुक्रं शनैश्चरं राहुं केतुं च नवग्रहम्। एवं लोकेश्वरवज्रपाणिमञ्जुश्रीप्रभृतीन् बोधिसत्त्वान्। एवं विपश्यीशिखीप्रभृतीन् बुद्धान् साधयेत्। एवम् अपराजितादीन् भूतान्। एवं यमार्यादीन् दूतान्। एवं वज्रकंकालादीन् चेटान्। एवं सर्वसत्त्वान् स्त्रीपुरुषान् साधयेत्। सर्व आज्ञाकरा भवन्ति ॥१८॥

वरगद काठ से निर्मित श्रीदेवी, राजा, देवदारु-निर्मित तिलोत्तमा, शशिदेवी, काञ्चनमाला, कुण्डलहारिणी, रत्नमाला, आरम्भा, उर्वशी, श्रीभूषणी, रति, शचि आदि अप्सरागणों की साधना करें। एवं रीत से सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनिश्चर, राहु और केतु नवग्रहों की भी साधना करें। एवं प्रकार से लोकेश्वर, वज्रपाणि, मञ्जुश्री आदि बोधिसत्त्वों की साधना करें। विपश्विी, शिखी आदि बुद्धों की साधना करें। अपराजित आदि भूत गणों की, यमारी आदि दूतों की, वज्र कङ्काल आदि चेटों की, सर्वसत्त्व-स्त्री पुरुष आदि की भी साधना करें। वे सब आज्ञाकारी होते हैं॥ १८ ॥

अथैकवारे न सिध्यति तदा पुनर् द्वितीयं वारं कुर्यात्। न तथा चेत् तदा तृतीयं वारम् आरभेत्। न तथापि चेत् पूर्वकृतमहदशुभात् तदा

वामजानुना सव्यपादेनाक्रम्य तावज् जपेद् यावत् सिध्यति। ततो ब्रह्मघ्नस्यापि सिध्यति॥ १६ ॥

यदि एक वार में सिद्धि नहीं होती है तो फिर दूसरी वार साधना करनी चाहिए। इससे भी नहीं तो तीसरी वार करनी चाहिए। यदि इससे भी न हो तो पहले किए हुए महान् अशुभ के कारण यह न हुआ है अतएव वामघुटने से तथा दाहिने पैर से बैठकर आक्रामक होकर तब तक जाप करें। जब तक सिद्धि नहीं होती तब तो ब्रह्म हत्यारा भी सिद्ध हो जाएगा॥ १६ ॥

तत्रेदं चण्डमहारोषणसाधने मन्त्रविदर्भणम्। ॐ चण्डमहारोषण आगच्छ, आगच्छ हूं फट्। खड्गादिसिद्धौ तु अमुकं मे साधयेति योजयेत्। पादाक्रमणे तु, अमुकं हन हन, इति योजयेत्॥ २० ॥

इस चण्ड महारोषण की साधना में मन्त्रों की स्थिति है। ॐ चण्डमहारोषण आगच्छ आगच्छ हूँ फट्। खड्ग आदि की सिद्धि में तो अमुक की सिद्धि करें यह भी जोड़ना चाहिए। पादाक्रमण में तो अमुको मारो यह जोड़ना चाहिए॥ २० ॥

एकवारोच्चारणेन सर्वाणि पञ्चानन्तर्यकृतान्य् अपि दहति। सर्वपापं मे नाशेयेति योजयेत्। एवं सर्वभयेषूच्चारणमात्रेण रक्षां करोति। रक्ष रक्ष माम् इति योजयेत्। एवं सर्वत्र रक्षाम् आवहति॥ २१ ॥

इस मन्त्र के एक वार के उच्चारण से ही समस्त पञ्च आनन्तर्यकृत कर्म भी भस्म होते हैं। सभी पाप नाश करें यह भी जोड़ना चाहिए। इसी प्रकार सभी भयों के अवसर पर उच्चारण मात्र से रक्षा करता है। रक्ष रक्ष माम् यह जोड़ दें। इस प्रकार सभी जगह रक्षा करता है॥ २१ ॥

अथ प्रज्वलन्तम् इव लोहं ध्यात्वा सर्षपं मुद्गं माषं चाष्टोत्तरशतवारान् निजमन्त्रेणामन्त्र्य डाकिन्यादिगृहीतं ताडयेत्। सर्वे ते ऽपसरन्ति। ताडनकाले डाकिन्यादिकम् अपसारयेति योजयेत्॥ २२ ॥

अब जलते हुए लौह को ध्यान करके सरसों, गहत एवं माषों को १०८ बार उक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित कर डाकिनी आदि से गृहीत को पीटें। वे सब भाग जाते हैं। पीटते समय डाकिनी आदि को हटायें ऐसा बोलना चाहिए॥ २२ ॥

अथ खटिकाया अपक्वशरावद्वये ऽष्टदलपद्मान्तर्गतं मन्त्रं कृत्वा सम्पुटीकृत्य कैवर्तजालेन वेष्टयित्वा द्वारे लम्बापयेत्। बालानां रक्षां करोति। रक्ष रक्ष बालकम् इति योजयेत्॥ २३ ॥

अब कच्चे छोटे मिट्टी के दो सकोरों में अष्टदल-पद्म के अन्तर्गत मन्त्रित करके सम्पुट बनाकर कैवर्त के जाल से वेष्टन कर द्वार में लटकायें। इससे बच्चों की रक्षा होती है। बालकोंकी रक्षा करो इतना और जोड़े॥ २३ ॥

मदनेन चतुरङ्गुलसाध्यपुत्तलिकां कृत्वा तद्धृदि भूर्जे मन्त्रम् अभिलिख्य राजिकादिना प्रक्षिपेत्। ततः कण्टकेन मुखं कीलयेत्। प्रतिवादिनो मुखं कीलितं भवति। देवदत्तस्य मुखं कीलयेति योज्यम्। तच्चुष्पथे निखनेत्। एवं पादौ कीलयेत्। गतिम् आगतिं स्तम्भयति। देवदत्तस्य पादौ कीलयेति योज्यम्। हृदयं कीलयेत्। कायं स्तम्भयति। देवदत्तस्य हृदयं कीलयेति योज्यम्॥ २४ ॥

मदन के द्वारा चार अङ्गुली युक्त पुत्तलिका का निर्माण कर उसके हृदय में भूर्ज पत्र में मन्त्र लिखकर कमल के द्वारा प्रक्षिप्त करें। फिर काँटे से मुख को बन्द कर दे। इससे प्रतिवादी का मुख बन्द हो जाता है। देवदत्त का मुख बन्द करो इत्यादि जोड़ देना चाहिए। चौराहे पर गाड़ दे। इससे दोनों पैर गड़ जाते हैं। इससे गति और आगति रुकते हैं। देवदत्त के पैर बन्द कर दो ऐसा जोड़ दें। हृदय का कीलन कर दो। शरीर बन्द हो जाता है इसमें उसके हृदय को कीलित कर दो यह वाक्य जोड़ दें॥ २४ ॥

मानुषास्थिकीलकेन लौहेन वा संकोचकण्टकेन वा यान्य् अङ्गानि कीलयति तानि तस्य खिल्लितानि व्यथाबहुलानि भवन्ति। देवदत्तस्यामुकाङ्गं कीलयेति योज्यम्॥ २५ ॥

मनुष्यों के हड्डियों के कीलन के द्वारा अथवा लोहा से भी, या संकोच काँटों से जिन-जिन अङ्गों को कीलित करते है उसके उन्हीं अङ्गों में बहुत ज्यादा व्यथा होती है। फलाने के उस अङ्ग को कीलित कर दो यह वाक्य जोड़ देवें॥ २५ ॥

यस्य गृहद्वारे निखनेत् तम् उच्छादयति। देवदत्तम् उच्छादयेति योज्यम्। अभिमन्त्रितश्मशानभस्मना द्वारपटलयोर् निक्षेपाद् उच्चाटयति।

देवदत्तम् उच्चाटयेति योज्यम्॥ २६ ॥

जिसके घर के द्वार में गाड़ दिया जाता है उसका वह घर उखड़ जाता है। फलाने को उच्चिन्त करो यह कहना पड़ता है। अभिमन्त्रित श्मशान के भस्म को द्वार में रख देने से वह उच्छिन्न हो जाता है। देवदत्त को उच्छिन्न करो इतना वाक्य जोड़ दें॥ २६ ॥

पुत्तलिकां कण्टकैः खिल्लितां कृत्वा जपेत्।
देवदत्तं मारयेति योज्यम्॥ २७ ॥

पुत्तलिका को काँटों से फाड़कर जाप करें। देवदत्त को मार दो इतना वाक्य जोड़ें॥ २७ ॥

खड्गादिकम् अष्टोत्तरशतवारान् निजमन्त्रेनाभिमन्त्र्य युद्धं कुर्यात्। जयम् आसादयति। यत् कार्यम् उद्दिश्य बलिं दद्यात् तत् तस्य सिध्यति॥२८ ॥

खड्ग आदि को १०८ वार उक्तमन्त्र से अभिमन्त्रित करके युद्ध करे। विजय पाया जाता है। जिस कार्य को सोचकर बलि दिया जाता है वह पूर्ण होता है॥ २८ ॥

पापरोगादिव्याधिं मयूरपिच्छम्-
अष्टोत्तरशतेनाभिमन्त्र्य निजमन्त्रेणापमार्जयेत्।
अमुकस्यामुकरोगं नाशयेति योजयेत्।
सर्वव्याधिशान्तिर् भवति॥ २९ ॥

पाप, रोग -व्याधि आदि के लिए मयूर के पंख को उक्त मन्त्र से १०८ वार अभिमन्त्रित करके अपमार्जित करें। फलाने का वह रोग शान्त कर दो यह बोल दें। सभी रोग नष्ट होते हैं॥ २९ ॥

तथैव दष्टकम् अपमार्जयेद् धस्ततालुद्वयेन। देवदत्तस्य विषं नाशयेति योज्यम्। निर्विषं कुरुते॥ ३० ॥

आठ वार हात और तालु से अपमार्जित कर दे। देवदत्त का विष नष्ट हो यह बोलना चाहिए। वह निर्विष हो जाता है॥ ३० ॥

एवं वशीभूतम् आयत्तं स्वस्थानम् आगतं नग्नं मुक्तकेशं चाग्रतो ध्यात्वा पादपतितं च दृष्ट्वा जपेत्। वशो भवति। अमुकं च वशम् आनयेति

योजयेत्। एवं पूर्ववद् आकृष्टं ध्यात्वा जपेत्। आकृष्टो भवति। अमुकम् आकर्षयेति योज्यम्॥ ३१॥

इस प्रकार वशीभूत, आए हुए, नग्न, मुक्तकेश को आगे ध्यान करने से वह पैर में गिरा हुआ दिखता है तब जप करें। वह वश में होता है, फलाने को वश में लाओ यह जपना चाहिए। आकृष्ट होता है। फलाने को आकृष्ट करो इतना जोड़ दें॥ ३१ ॥

आत्मानं धनधान्यादिपरिपूर्णं ध्यात्वा जपेत्। पुष्टिं मे कुर्व् इति योज्यम्॥ ३२ ॥

अपने आपको धन-धान्य से परिपूर्ण रूप में ध्यान करके जपें। मुझे पुष्ट करो इतना जोड़ दें॥ ३२ ॥

इदं मन्त्रं त्रिकोणद्वयसम्पुटमध्ये पर्णपत्रे कण्टकेन लिखित्वा पञ्चमरीचैः सह ताम्बूलं भक्षयेत्। सर्वज्वराणि नाशयेति योज्यम्॥ ३३ ॥

इस मन्त्र को त्रिकोण से युक्त दो सम्पुटों के मध्य-पर्ण पत्र में काँटे से लिखकर पाँच रश्मियों के साथ ताम्बूल का भक्षण करे। सभी ज्वरों का नाश करो यह वाक्य जोड़ दें॥ ३३ ॥

चन्द्रग्रहे सूर्यग्रहे वा क्षीरभक्तेन दधिभक्तेन वा पात्रं पूरयित्वा सशर्करेण सघृतेन सप्ताश्वत्थपत्त्रोपरि स्थापयित्वा सप्तपत्राच्छादितं कृत्वा हस्ताभ्याम् अवष्टभ्य तावज् जपेद् यावन् मुक्तो न भवति। तं भक्षयेत्। पञ्चशतायुर् भवति॥ ३४ ॥

चन्द्र ग्रहण अथवा सूर्य ग्रहण में क्षीर भात के द्वारा पात्र को पूरित कर शर्करा सहित, घी मिलाकर ६ पीपल के पत्तों के ऊपर रखकर ६ पत्तों से ऊपर से ढक दे और हाथों से पकड़कर तब तक जाप करें जब तक मुक्त न हो। उसे खा जाए। पाँच सौ वर्ष आयु होती है॥ ३४ ॥

अनेनैव क्रमेण हरितालं गोरोचनं मनः शिलां वा साधयेत्, कगालं वा। ज्वलिते तिलकेनाञ्जनेन वा विद्याधरः। धूमापिते ऽन्तर्धानम्। उष्मापिते वशीकरणम्॥ ३५ ॥

इसी क्रम से हरिताल, गोरोचन, मनस् शिला की सिद्धि करें। अथवा कगाल की भी। ज्वलित तिलक - या अञ्जन से वह विद्याधर हो जाता है।

धूवाँ के होने से अन्तर्ध्यान हो जाता है। उष्म से वशीकरण हो जाता है॥ ३५ ॥

अथवा नागेश्वरकाष्ठमयम् अनन्तं नागराजं कारयेत्। तं जलमध्ये ऽधोमुखीकृत्य जपेद् आकाशं पश्यन्। हर हर, अनन्तं शीघ्रं वर्षापयेति योजयेत्। देवो वर्षति॥ ३६ ॥

अथवा नागेश्वर को काष्ठ से निर्मित कर नागराज का निर्माण करे। उसे पत्र में नीचे की ओर मुख करके आकाश को देखते हुए जाप करें। हर हर अनन्त शीघ्र वर्षा कराओ यह कहना चाहिए। मेघ बरसते हैं॥ ३६ ॥

अथानन्तं जलाद् उद्धृत्य क्षीरेण स्नापयित्वा विसर्जयेत्। अथ मेघं व्यवलोकयञ् जपेत्। सर्ववातवृष्टिं स्तम्भयेति योजयेति योजयेत्। इति सार्धदशाक्षरकल्पः। एवं द्वितीयतृतीयमूलमन्त्रयोः कल्पः। हृदयमन्त्राणाम् अप्य् अयम् एव कल्पः॥ ३७ ॥

अब उसे पानी से बाहर निकाल कर दूध से नहलाकर विसर्जित कर दे। अब मेघ को देखते हुए जप करें। सभी वात दृष्टि का स्तम्भन करें इतना जोड़ दें। यही साढे १० अक्षर कल्प है। इसी प्रकार द्वितीय एवं तृतीय मूल मन्त्रों का कल्प भी है। हृदय मन्त्रों का भी यही कल्प है॥ ३७ ॥

प्रथममालामन्त्रं केतकीपत्रे कण्टकेन लिखित्वा नीलवस्त्रसूत्राभ्याम् आवेष्ट्य ज्वरितस्य शिरसि बाहौ कण्ठे वा पृष्ठे वामपादं दत्त्वा बन्धयेत् क्रोधचेतसामुकस्य ज्वरं नाशयामीति कृत्वा। सर्वज्वराणि नाशयति॥ ३८ ॥

प्रथम माला मन्त्र को केतकी पत्र में कण्टक से लिखकर नील वस्त्र सूत्रों से आवेष्टित करके ज्वरग्रस्त के शिर में, बाहु में, कण्ठ में, पृष्ठभाग में वाम पाद में देकर बन्धित करें। क्रोध से युक्त होकर फलाने के ज्वर को नाश करता हूँ ऐसा करना चाहिए। सभी ज्वर नष्ट होते हैं॥ ३८ ॥

बन्धनकाले रोगिणं पूर्वाभिमुखीकृत्य दग्धमत्स्यभक्तमद्यादिपूर्णशरावेण निर्मञ्छयित्वा, इदं भुक्त्वा, सर्वे ज्वरादयो ऽपसरन्तु शीघ्रं भगवान् चण्डमहारोषण एवं आज्ञापयति। यदि नापसरिष्यथ तदा भगवान् क्रुद्धस् तीक्ष्णेन खड्गेन तिलप्रमाणं कृत्वा छेत्स्यति। इत्य उक्त्वा नैरृतकोणे दद्यात्। ततो भद्रं भवति॥ ३९ ॥

बन्धन काल में रोगी को पूर्वाभिमुख करके जले हुए मछली, भात, मद्य आदि से पूर्ण सकोरों में उन्हें लेकर यह खाकर, सभी ज्वर आदि व्याधि नष्ट हों भगवान् चण्डमहारोषण इस प्रकार की आज्ञा देते हैं। यदि नहीं तो भगवान् तीक्ष्ण खड्ग से क्रुद्ध होकर छोटे टुकड़ों में कर देंगे काटकर, ऐसा कहकर नैग त्य कोण में रख दे। तब कल्याण होता है॥ ३९ ॥

एवं सर्वव्याधिडाकिन्याद्युपद्रवे च बलिर् देयः। सर्वभयेषु पठितमात्रेण रक्षां करोति। अपरं मूलमन्त्रोक्तं सर्वं करोति। द्वितीयमाला-मन्त्रस्याप्य् अयम् एव विधिः॥ ४० ॥

इस प्रकार सर्वव्याधि डाकिनी आदि उपद्रव के होने पर बलि देना चाहिए। सभी मयों में पढने मात्र से रक्षा करता है। इसमें भी मूल मन्त्रोक्त विधि की जाती है। द्वितीय माला मन्त्र का भी यही विधि है॥ ४० ॥

तृतीयमालामन्त्रेणोत्सृष्टपिण्डम् अभिमन्त्र्य दद्यात्। वरदो भवति। भक्तपिण्डम् अभिमन्त्र्य विकालवेलायां विविक्ते दद्याद्। यत् कार्यम् उद्दिश्य तत् सर्वं सिध्यति। शेषकल्पस् तु पूर्ववत्। पूर्ववद् विधिना शुक्लप्रतिपदम् आरभ्य पौर्णमासीं यावत् पूर्ववत् कुर्यात्॥ ४१ ॥

तीसरे मालामन्त्र से उत्सृष्ट पिण्ड को अभिमन्त्रित कर दे देना चाहिए। वह वरदायक होता है। भक्ति पिण्ड को अभिमन्त्रित करके अकाल समय में एकान्त में दे। जिस कार्य का उद्देश्य किया है वह सिद्ध हो जाता है। अन्य कल्प पहले के तरह ही हैं। शुक्ल प्रतिपदा से लेकर पूर्णमासी तक यह करना चाहिए॥ ४१ ॥

मालामन्त्राणां दशसहस्रेण पूर्वसेवा भवति। देवानां विशेषमन्त्राणां मूलमन्त्रवत् कल्पः। यथा भगवतो मन्त्रकल्पस् तथा देवीनां। विशेषस् तु मालामन्त्रजापात् कवित्वं पाण्डित्यं च शीघ्रम् एव सम्पद्यते॥ ४२ ॥

माला मन्त्रों की १० हजार के द्वारा पूर्व सेवा होती है। देव विशेष मन्त्रों का कल्प मूल मन्त्र के तरह ही होता है। भगवान् के मूल कल्प के तरह ही देवियों के कल्प भी हैं। मालामन्त्रों के जाप से कवित्व, पाण्डित्य शीघ्र प्राप्त होते हैं॥ ४२ ॥

तृतीयमूलमन्त्रस्य कल्पो भवति। शयनम् आरुह्य वामहस्तेन लिङ्गं गृहीत्वाष्टशतं जपेद् यस्या नाम्रा सागच्छति। कामयेत्। मन्त्रः ॐ वौहेरि अमुकी मायातु हूं फट्॥ ४३ ॥

तृतीय मूल मन्त्र का कल्प यह है। विस्तर में सोकर वामहस्त से लिङ्ग को पकड़कर ८सौ जपने से जिसकी कामना है वह आ जाती है। कामना करें। मन्त्र है – ॐ वौहेरि अमुकी मायातु हूँ फट्॥ ४३ ॥

गैरिकया भगं आलिख्य भूमौ वामहस्तेनावष्टभ्याष्टशतं जपेद् यस्या नाम्रा सागच्छति॥ ४४ ॥

गैरिक धातु से भग का चित्र बनाकर भूमि में वामहस्त से पकड़कर ८सौ जपने से जिसकी चाह हो वह आ जाती है॥ ४४ ॥

सर्षपं सप्ताभिमन्त्रितं कृत्वा पुरुषं ताडयेत्। निर्व्याधिर् भवति। मनसा कल्पयेत्। उदकं परिजप्य हन्यात्। रुधिरं स्त्रवति। वस्त्रं परिजप्या-वगुण्ठयेत्। सर्वजनप्रियो भवति। लवणं परिजप्य यस्य खाने पाने दद्यात् तं वशीकरोति॥ ४५ ॥

सरसों को ७ बार अभिमन्त्रित करके पुरुष का ताडन करें। व्याधि रहित होता है। मन से कल्पना करें। पानी को अभिमन्त्रित करके हनन करें। रक्त वहता है। वस्त्र में जापकर उसे बाँध दे। वह सभी का प्रिय होता है। लवण को अभिमन्त्रित कर जिसके भोजन या जल में पिला दे या खिला दे वह वश में होता है॥ ४५ ॥

गोवालरज्जुं यस्य गले बध्नात्य अभिमन्त्र्य स गौर् भवति। आदित्याभिमुखो यस्य नाम्रा जपेत् तम् आकर्षयति। विडालरोमरज्जुं यस्य गले बध्नातिस विडालो भवति। काकस्नायुरज्जुना काको भवति। पुरुषकेशरज्जुना पुरुषो भवति। स्त्रीकेशरज्जुना स्त्री भवति॥ ४६ ॥

गो बाल (गाय के बछड़े) रज्जु को अभिमन्त्रित करके जिसके गले में बाँधे वह गौ हो जाता है। सूर्य की ओर देखकर जिसके नाम से जपे वह आकृष्ट होता है।

बिल्ली के बालों को जिसके गले में अभिमन्त्रित करके बाँध देता है वह बिल्ली होता है।

काक (कौवा) के स्नायु के बन्धन से वह कौवा होता है। पुरुष केश के रज्जु के बन्धन से पुरुष होता है। स्त्री के केश-रज्जु के बन्धन से स्त्री होता है॥ ४६ ॥

एवं यस्य यस्य केशरोमादिरज्जुः क्रियते तस्य तस्यैव रूपपरिवर्तनं भवति। यस्य नाम्ना जपेत् तस्य रक्ताकृष्टिः। अनिमिषनयनो यं दृष्ट्वा जपति स वश्यो भवति। इति देवीमन्त्रकल्पः॥ ४७ ॥

इस प्रकार जिस-जिस केश रज्जु से बाँध दिया जाता है उसका वह रूप परिवर्तित हो जाता है। जिसका नाम जपता है वह आकर्षित होता है। पलक न हिलाकर जिसको देखकर जप करता है वह वश में हो जाता है। यही देवी मन्त्र कल्प है॥ ४७ ॥

बलिमन्त्रेण बलिं दद्यात्। सर्वोपद्रवव्याधिविघ्नादिशान्तिर् भवति। यस्मिन् कार्ये समुत्पन्ने बलिम् उपहरेत् तत् तस्य सिध्यति। सितपुष्प-शरावक्षीरशरावसुगन्धिजलशरावभक्तशराव इति शरावचतुष्टयं फलोपफलिकां च प्रशान्तायां रात्रौ ॐ चण्डमहारोषण इमं बलिं गृह्ण, अमुककार्यं मे साधय हूं फट् इत्य् अष्टोत्तरशतेनाभिमन्त्र्य निवेदयेत् विविक्ते। तस्याभिमतं सिध्यति॥ ४८ ॥

बलिमन्त्र से बलि देना चाहिए। सभी उपद्रव, व्याधि विघ्न शान्त होते हैं। जिस कार्य के लिए उसके उत्पन्न होने पर बलि देता है वह पूरा होता है। सफेद पुष्प के साथ सकोरों में दूध डालकर सुगन्धित जल भर कर चार सकोरों में शान्त रात्रि को ॐ चण्ड महारोषण हमं बलि गृह्ण अमुक कार्यं च साधय हूँ फट् इस मन्त्र से १०८ वार अभिमन्त्रित करके एकान्त में निवेदन करें। उसकी इच्छा पूरी होती है॥ ४८ ॥

अथ भगवतो मूलमन्त्रेणाष्टोत्तरशतजप्तेन कटुतैलेन गुर्विण्या भगाभ्यन्तरं म्रक्षयेत्। पिबेच् च। सुखेन प्रसूयते। अनेनैव व्रणम्रक्षणाच् छान्तिर् भवति। सर्वं भक्षणेनापि॥ ४९ ॥

अब भगवान् के मूल मन्त्र से १०८ जप पूर्वक सरसों के तेल से उस मारणि भारी गर्भिणी भग के भीतर रख दें। पीये भी। सुखपूर्वक प्रसव होता है। इसी प्रकार व्रणों के मोक्षण से शान्ति होती है। सब कुछ खाकर भी शान्ति

होती है॥ ४९ ॥

प्रथममालामन्त्रं भूर्जे षोडशदलकमलमध्ये लिखेत्। नीलसूत्रेण वेष्टयित्वा शरीरे धारयेत्। सर्वत्र रक्षा भवति। गोरोचनालक्तेत लिखेत् ॥ ५० ॥

प्रथम माला मन्त्र को १६ दलों से युक्तं भोजपत्ते में लिखें। नील सूत्र से लपेट कर शरीर में धारण करें। सर्वत्र रक्षा होती है। गो रोचन से लिखे ॥ ५० ॥

द्वितीयस्याप्य् अयं विधिः। एवम् अन्यतन्त्रकल्पोक्तम् अप्य् अत्रैव नियोजयेत्। तथैव सर्वं सिध्यति भावनासक्तयोगिनः॥ ५१ ॥

दूसरे माला मन्त्र का भी यही विधि है। अन्य कल्पों में बताए हुए विधि का भी यहीं समायोजन है। भावनासक्त योगियों का सब कुछ सिद्ध होता है॥ ५१ ॥

इत्य् एकल्लवीराख्ये श्रीचण्डमहारोषणतन्त्रे सर्वमन्त्रकल्पपटलो द्वादशमः॥

इस प्रकार एकल वीर नामक श्रीचण्डमहारोषणतन्त्र में सर्वमन्त्रकल्प नामक १२वाँ पटल पूर्ण हुआ।

पटलः १३

अथ भगवत्य् आह॥

अब भगवती कहती है।

स्थातव्यं योगिना केन संवरेण वद प्रभो।

चर्या च कीदृशी कार्या सिद्धिः केनाशु लभ्यते॥ १ ॥

हे भगवन्! योगी को किस संवर के साथ रहना चाहिए। साथ ही चर्या किस प्रकार की होनी चाहिए और किस विधि से शीघ्र सिद्धि होती है। कृपया आप बतायें॥ १ ॥

भगवान् आह॥

भगवान् कहते हैं।

मारणीया हि वै दुष्टा बुद्धशा[स]नदूषकाः।

तेषाम् एव धनं गृह्य सत्त्वेभ्यो हितम् आचरेत्॥ २ ॥

बुद्ध शासन के विरोधी-प्रदूषकों को मार डालना चाहिए। उन्हीं का धन लेकर प्राणियों के हित में लगाना चाहिए॥ २ ॥

चण्डाः सर्वा हि वै सेव्या यन्यिो मातरं सुतीम्।

भक्षयेत् मत्स्यमांसं तु पिबेन् मद्यं समाहितः॥ ३ ॥

सभी चण्डों की सेवा करें। पत्नियों, माता और सुता की भी सेवा करनी चाहिए। और मद्य का पान एवं मत्स्य और मांस का सेवन करें॥ ३ ॥

मिथ्यया स्वपरयोर् दोषं च्छादयेद् ध्यानतत्परः।

सिध्यते निर्विकल्पात्मा गुप्तशिक्षाप्रयोगतः॥ ४ ॥

ध्यान में लगा हुआ योगी मिथ्या कारणों से अपने और दूसरों के दोषों का छिपा दें। इस प्रकार गुप्त-शिक्षा के प्रयोग से निर्विकल्प तत्त्व सिद्ध होता है॥ ४ ॥

येन येनैव पापेन सत्त्वा गच्छन्त्य् अधोगतिम्।
तेन तेनैव पापेन योगी शीघ्रं प्रसिध्यति॥ ५ ॥

जिन जिन पापों से प्राणी अधोगति को प्राप्त होते हैं उन्हीं पापों से योगी सिद्धि को प्राप्त करता है॥ ५ ॥

अथ भगवती द्वेषवज्री भगवन्तम् एवम् आह। कथं भगवन् विपरीतसंवरं भाषसे॥

अब भगवती द्वेष वज्री ने भगवान् से यह कहा। क्यों भगवन्! आप उल्टा व्रत नियम (संवर) बता रहे हैं।

अथ भगवान् आह॥

भगवान् कहते हैं।

रागेण हन्यते रागो वह्निदाहो ऽथ वह्निना।
विषेणापि विषं हन्याद् उपदेशप्रयोगतः॥ ६ ॥

ठीक नियम के प्रयोग से राग से राग नष्ट होता है। वल्लिका दाह उसी के सेकने से नष्ट होता है। विष से विष नष्ट होता है॥ ६ ॥

निःस्वभावं जगद् ध्यात्वा सिद्धो ऽहम् इति भावयन्।
सुगुप्तं चाचरेत् सर्वं यथा को ऽ पि न बुध्यते॥ ७ ॥

निःस्वभाव जगत को ध्यान करके मैं सिद्ध हूँ इस भावना से सुगुप्त साधना द्वारा वह पूर्ण होता है। साधना ऐसी होनी चाहिए कि कोई भी जान न पाये॥ ७ ॥

सर्वपापक्षयं कृत्वा विपरीतेनैव सिध्यति।
न करोति सुगुप्तं यो योगी योगैकतत्परः॥ ८ ॥
विपरीतसंवरे ऽस्मिन् सिद्धिस् तस्य न विद्यते।
पापं नास्ति न पुण्यं च निःस्वभावस्वभावतः॥ ९ ॥

सभी पापों का क्षय करके विपरीत कृत्य से सिद्धि होती है। यदि वह यागी अत्यन्त गोपनीयता से यदि नहीं करता है तो – योग में लगकर भी, इस विपरीत विधान में उसको सिद्धि नहीं मिलती। यहाँ न कोई पाप और पुण्य ही है क्योंकि सब कुछ निःस्वभाव स्वभाव ही जगत् है॥ ८-९॥

लोककौकृत्यनाशार्थं मया न प्रकटीकृतम्।
इदानीं चैवोक्तं सत्यं चण्डरूपेण भो प्रिये॥ १० ॥

लोक के कुकृत्य के नाश के लिए मैंने यह कभी भी प्रकट नहीं किया है। इस समय केवल चण्ड के रूप में आकर हे प्रिये यह बता रहा हूँ॥ १० ॥

योगिलोकावताराय सर्वसत्त्वार्थहेतवे।
प्रकटं संवरं वक्ष्ये शृणु त्वम् अधुना प्रिये॥ ११ ॥

योगियों के लोक में अवतरण के लिए, सभी प्राणियों के कल्याणार्थ इस संवर को प्रकट रूप से तुम्हें बताता हूँ। तुम अब सुनो॥ ११ ॥

न च प्राणिवधं कुर्यात् न परस्वापहारणम्।
परस्त्रीहरणं नैव नैव भाषेन् मृषा वचः॥ १२ ॥
मद्यं नैव पीबेद् धीमान् लोककौकृत्यहानये।
प्रकटं शिक्षापदं ह्य् एतत् सादरं च समारभेत्॥ १३ ॥

कभी वह प्राणिवध न करें। दूसरों की सम्पत्ति का हरण न करें। पर स्त्री का हरण भी न करें। साथ ही मिथ्या भाषण भी न करें। मद्य को पान न करें – बुद्धिमान्, लोककौकृत्य के नाश हेतु ही मैंने यह प्रकट शिक्षा पद आदर पूर्वक इसका पालन करें॥ १२-१३॥

यद् उक्तं संवरं ह्य् एतत् चर्येदानीं हि कथ्यते।
रत्नमौलं शिरे कुर्यात् ताटङ्कं कर्णयोस् तथा॥ १४ ॥
नानालंकारकं कृत्वा धारयेद् आत्मदेहके।
पादयोर् नूपुरं कार्यं मेखलां च तथा कटौ॥ १५ ॥
सव्यहस्ते तथा खड्गं पाशं वामे प्रधारयेत्।
मौलौ च मूद्रणं कार्यं पञ्चबुद्धप्रयोगतः॥ १६ ॥
पञ्चचीरं तु कर्तव्यं श्मश्रुकेशं विखण्डयेत्।
दशाब्दोर्ध्ववयःस्थां तु गृह्य चर्यां समाचरेत्॥ १७ ॥

मैंने संवर के विषय में बताया है। अब चर्या के विषय में बता रहा हूँ। रत्नों से बने टोप को शिर में, कानों में ताटङ्क के फूल धारण करें। फिर अनेक प्रकार के अलङ्कार आभूषण बनाकर अपने शरीर में धारण करें। कटि में

मेखला पैरों में नुपूर एवं सव्य हस्त में खड्ग तथा वामहस्त में पाश, मौलि में मुद्रण हो - पञ्च बुद्धों के योग पूर्वक, पाँच चीवर हों, दाढ़ी बाल कटे हों। १० वर्ष से ऊपर की कन्या को लेकर चर्या का आरंभ करें॥ १४-१७ ॥

पूर्वोक्तकुलभेदेन कन्यां वै प्रकल्पयेत्।
कन्यायोगम् अलङ्कारैर् मण्डयेत् तां च नित्यशः॥ १८ ॥
सव्ये कर्त्तिं च वै दद्यात् वामे चैव कपालकम्।
कुलभेदेन वै कुर्याद् वर्णभेदोपतिस् तनौ॥ १९ ॥
गृहीत्वा स्वकुलीं प्रज्ञां परकुलीं वा समाहितः।
स्वेच्छया तु समागृह्य चर्यात्मतां समाचरेत्॥ २० ॥

पूर्वोक्त कुल के भेद से कन्या की कल्पना करनी चाहिए। उस कन्या को नित्य प्रति अनेक अलङ्कारों से मण्डित करें। दायें हाथ में खड्ग दे, वाम हात में कपाल, कुल भेद के अनुसार और वर्ण भेद के अनुसार ही शरीर में पकड़ कर अपने कुल की प्रज्ञा को तथा परकुल की भी हो सकती है, एकाग्र होकर स्वेच्छा से ग्रहण कर चर्या का आरंभ करना चाहिए॥ १८-२० ॥

रत्नादेर् अभावेन कुर्याद् आर्था दिनिर्मितम्।
अथवा चेतसा कुर्याद् यद्य् अलाभः प्रवर्तते॥ २१ ॥

यदि रत्नों का अभाव हो तो अन्य मिट्टी आदि के ही अलङ्कारों का प्रयोग करें। उसके भी अभाव में मानसिक ही अलङ्कार तैयार करें॥ २१ ॥

विहरेत् पञ्चसमयान् कुलपञ्चप्रभेदतः।
पूर्वोक्तेनैव योगेन द्वाभ्यां द्वंद्वं समारभेत्॥ २२ ॥

पाँच समयों का पाँच कुल भेद के अनुसार पूर्वोक्त विधि से ही यह अनुष्ठान करना चाहिए और दो दो का योग आरंभ करना चाहिए॥ २२ ॥

सिध्यते सर्वथा यागी नात्र कार्या विचारणा।
प्रज्ञोपायसमायोगान् नखं दद्यात् तु त्र्यक्षरम्॥ २३ ॥
चुम्बनालिङ्गनं चैव सर्वस्वं शुक्रम् एव च।
दानपारमिता पूर्ना भवत्य् एव न संशयः॥ २४ ॥
तत्परं कायवाक्चित्तं संवृतं गाढसौख्यातः।
शीलपारमिता ज्ञेया सहनाच् च नखक्षतम्॥ २५ ॥

त्र्यक्षरं पीडनं चैव क्षान्तिपारमिता त्व् इयम्।
सादरं तु दीर्घकालं रतिं कुर्यात् समाहितः॥ २६ ॥
वीर्यपारमिता ज्ञेया तत्सुखे चित्तयोजनात्।
सर्वतो भावरूपेण ध्यानपारमिता मता॥ २७ ॥
स्त्रीरूपभावना प्रज्ञापारमिता सा प्रकीर्तिता।
सुरतैकयोगमात्रेण पूर्णा षट्पारमिता॥ २८ ॥

इस रीति से योगी सिद्ध हो जाता है इसमें सन्देह नहीं है। इसके लिए प्रया और उपाय रूप योग है। इसके लिए त्र्यक्षर को समायोजित करें। नख का देना, चुम्बन, आलिङ्गन और सर्वस्त तो शुक्र है। इस प्रकार के दान से ही दान पारमिता पूर्ण होती है, इसमें सन्देह नहीं है। उसके बाद काय, वाक् और चित्त के साथ गाढ सौख्य पूर्वक एकत्व है, उससे शील पारमिता पूर्ण होती है। क्योंकि नख क्षत के सहन से ही यह पूर्ण होती है। तीन अक्षरों से होने वाला पीडन का सहन ही क्षान्ति पारमिता को पूर्णता की ओर ले जाता है। इसके द्वारा आदरपूर्वक दीर्घ काल तक एकाग्र होकर रति में लगना चाहिए। उसके सुख में चित्त को एकाग्र करने से ही वीर्य पारमिता पूर्ण होती है। सर्वत्र भाव के ग्रहण से, एकाग्रता से ध्यानपारमिता पूर्ण होती है। स्त्री रूप की पूर्ण भावना ही प्रज्ञा पारमिता है। सुरत के योग से ही वे षट् पारमितायें पूर्ण होती हैं॥ २३-२८ ॥

भवेत् पञ्चपारमिता पुण्यं ज्ञानं प्रज्ञेति कथ्यते।
सुरतयोगसमायुक्तो योगी सम्भारसम्भृतः॥ २९ ॥
सिध्यते क्षणमात्रेण पुण्यज्ञानसमन्वितः।
यथा लतासमुद् भूतं फलं पुष्पसमन्वितम्॥ ३० ॥

पञ्च पारमिता ही पुण्य है। ज्ञान ही प्रज्ञा है। सुरत और योग के समागम से ही योगी सम्भार में पूर्णता प्राप्त करता है। जब पुण्य और ज्ञान से समन्वित हो जाता है तब क्षणमात्र में वह सिद्ध होता है। जैसे लताओं से समुद्भूत वृक्ष पुष्प और फल से समन्वित हो जाता है॥ ३० ॥

एकक्षणाच् च सम्बोधिः सम्भारद्वयसम्भृता।
स त्रयोदशभूमीशो भवत्य् एव न संशयः॥ ३१ ॥

तत्काल ही सम्भारद्वय में संम्भृत वह योगी सम्बोधि को उपलब्ध होता है। साथ ही वह त्रयोदश भूमि का दंश हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं है॥ ३१ ॥

भूमिस् तु मुदिता ज्ञेया विमला चार्चिष्मती तथा।
प्रभाकरी सुदुर्जयाभिमुखी दूरङ्गमाचला॥ ३२ ॥
साधुमाती धर्ममेघा समन्तप्रभा तथा।
निरुपमा ज्ञानवतीत्य् एवं त्रयोदशसंज्ञया॥ ३३ ॥

वह भूमि मुदिता है। साथ ही विमला एवं अर्चिष्मती, प्रभाकरी, सुदुर्जया, अभिमुखी, दूरङ्गमा, अचला, साधुमती, धर्ममेघा एवं समन्तप्रभा तथा निरूपमा और ज्ञानवती ये १३ भूमियाँ हैं। वह योगी इनको तत्काल ही उपलब्ध हो जाता है॥ ३२-३३॥

इत्य् एकल्लवीराख्ये श्रीचण्डमहारोषणतन्त्रे चर्यापटलस् त्रयोदशमः॥

इस प्रकार एकलवीर नामक श्रीचण्डमहारोषण तन्त्र में
तेरहवाँ चर्यापटल समाप्त हुआ।

पटलः १४

अथ तस्मिन् पर्षदि समन्तभद्रो नाम वज्रयोगी भगवन्तम् एतद् अवोचत्। परिपृच्छाम्य् अहं नाथ किम् अर्थम् अचलसंज्ञकम् एकल्लवीरसंज्ञा च चण्डमहरोषणेति च॥

अब, उसी परिषद् में समन्तभद्र नामक वज्रयोगी ने भगवान् चण्डमहारोषण से यह कहा। हे भगवन् यह मैं पूछता हूँ क्यों अचल, एकलवीर और चण्डमहारोषण नाम कहे गए हैं।

अथ भगवान् आह।

अब भगवान् कहते हैं।

प्रज्ञोपायसमायोगान् निश्चलं सुखरूपिणम्।
प्रज्ञोपायात्मकं तच् च विरागेण न चालितम्॥ १ ॥

प्रज्ञा और उपाय के समायोग पूर्वक सुख स्वरूपात्मक, निश्चल एवं प्रज्ञोपायात्मक है। वह विराग से चालित नहीं हो सकता॥ १ ॥

तेनैवाचलम् आख्यातं वज्रसत्त्वस्वरूपिणम्।
द्विभुजैकमुखं शान्तं स्वच्छम् अप्रतिघमनः॥ २ ॥
खड्गपाशकराभ्यां तु प्रज्ञालिङ्गनतत्परम्।
सत्त्वपर्यङ्कम् आसीनं पद्मचन्द्ररविस्थितम्॥ ३ ॥
आ संसारं च तिष्ठेद् दिव्यसौख्येन सुस्थितम्।
तेनेदम् अचलं ख्यातं सर्वबुद्धैस् तु सेवितम्॥ ४ ॥
अचलं वै प्रभावित्वा सर्वे त्रैपथिका जिनाः।
सत्त्वार्थं हि वै कुर्वन्ति यावद् आहतसम्प्लवम्॥ ५ ॥

अतएव यह अचल नाम से प्रसिद्ध हो गया है – क्योंकि यह वज्रसत्त्व स्वरूप वाला है, दो हाथ, एक मुख, शान्त स्वभाव स्वच्छ और निश्चित चित्त

से युक्त होने से ही अचल है। साथ ही दोनों हाथों में खड्ग और पाश हैं, प्रज्ञा से आलिङ्गन में तत्पर भी हैं, सत्त्वों के साथ पर्यङ्क के स्थिति में हैं, चन्द्र और सूर्य को लिए हुए हैं, पूरे संसार में दिव्य सुखों के साथ स्थित हैं, इसीलिए इन्हें अचल कहा गया है, जो सर्व बुद्धों से सेवित भी हैं। सभी तीन पथों के जिन बोधि सत्त्व गण इन्हीं अचल को प्रभावित करते हैं। सर्वदा संसार में प्राणियों के हित के लिए ही काम करते है - संसार के पर्यन्त की स्थिति तक - अत अचल कहे गए हैं॥ २-५॥

अथ समन्तभद्र उवाच॥

समन्त भद्र ने कहा।

अकारेण किम् आख्यातं चकारेण किम् उच्यते।
लकारेण किम् उच्यते कीदृशं नाम संग्रहम्॥ ६ ॥

अचल में अकार से किसका वर्णन है। च कार और ल कार से किस का बोध किया जाता है, क्यों ऐसा नाम रखा गया है। इसका क्या तात्पर्य है। कृपया आप बतायें॥ ६ ॥

भगवान् आह॥

भगवान् ने कहा।

अकारेणाकृत्रिमं सहजस्वभावम् इत्य् उक्तम्।
चकारेणानन्दपरमानन्दविरमानन्द॥ ७ ॥
सहजानन्दाख्यचतुरानन्दस्वभावम् उक्तम्।
लकारेण ललनालालितं सुरतम् उक्तम्॥ ८ ॥
अकारेणोच्यते प्रज्ञा चकारेणाप्य् उपायकः।
प्रज्ञोपायैकयोगेन लकारः सुखलक्षणात्॥ ९ ॥
स एवैकल्लवीरस् तु एक एकल्लकः स्मृतः।
विरागमर्दनाद् वीरः ख्यात एकल्लवीरकः॥ १० ॥

अकार से अकृत्रिम सहज स्वभाव का निर्देश, च कार से आनन्द, परमानन्द, विरमानन्द एवं सहजानन्द रूप स्वभाव को कहा है। ल कार से ललना से सञ्चालित सुरत कहा गया है।

अ कार से प्रज्ञा, च कार से उपाय और ल कार से प्रज्ञा और उपाय से समुद्भुत सुख का निर्देश किया गया है।

एकल्लवीर में एक का अर्थ एकाकी रहने से है। एक होने से भी एकल या एकल्ल हैं। वैराग्य के मर्दन से वे वीर कहलाते हैं। अतएव एकलवीर इनका नाम है॥ ७-१० ॥

चण्डस् तीव्रतरश् चासौ स महारोषणः स्मृतः।
रोषणः क्रोधनो ज्ञेयः सर्वमारविमर्दनः॥ ११ ॥
विरागः चण्डनामा वै महान् रागादिमारणात्।
रोषणः क्रोधनस् तत्र विरागे दुर्दमे रिपौ॥ १२ ॥
वामगुल्फेन चायन्त्र्य ब्रह्मसूत्रं समाहितः।
दंष्ट्रोष्ठपुटः क्रुद्धो विरागं च विनाशयेत्॥ १३ ॥
अनया मुद्रया योगी प्रज्ञाम् आलिङ्ग्य निर्भरम्।
विरागं सर्वतो हत्वा बुद्धसिद्धिम् अवाप्नुते॥ १४ ॥

चण्डमहारोषण का अर्थ करते हुए कहते हैं - चण्ड - तीव्रता के कारण, रोषण - क्रोध के कारण, वह क्रोध भी भयङ्कर है अतएव सभी मारों का क्रोधपूर्वक तीव्रता के साथ महान् यत्न से नाश करने से चण्डमहारोषण कहे गए हैं।

रागों को मारने से वे चण्डनाम से ख्यात है। वे राग बड़े होने से वे भी महान् हैं। रोषण क्रोध है, विराग, दुर्दम रिपु में वे क्रोध करते हैं।

वाम गुल्फ से, क्रुद्ध होकर, एकाग्रता पूर्वक, बड़े दाँतों और फड़कते होठों से ब्रह्मसूत्रात्मक विराग का वे विनाश करते हैं। इसी मुद्रा से योगी निर्भर होकर प्रज्ञा का आलिङ्गन करता है, साथ ही सभी तरफ से विराग का हनन करके बुद्ध सिद्धि को प्राप्त होता है॥ ११-१४ ॥

इत्य् एकल्लवीराख्ये श्रीचण्डमहारोषणतन्त्रे ऽचलान्वयपटलश् चतुर्दशमः॥

इस प्रकार एकलवीर नामक चण्डमहारोषण तन्त्र में अचलान्वय नामक
१४वाँ पटल समाप्त हुआ।

पटलः १५

अथ भगवती द्वेषवज्र्य् उवाच।
एकवीरः कथं सिध्येद् ब्रूहि त्वं परमेश्वर॥

अब भगवती द्वेषवज्री ने कहा। हे परमेश्वर! वे एक वीर कैसे सिद्ध होते हैं मुझे बतायें।

अथ भगवान् आह॥

भगवान् ने कहा।

झटित्य् आकारयोगेन कृष्णाचलं विभावयेत्।
ततः स्थैर्यबलाद् एव योगी बुद्धो न संशयः॥ १ ॥

तत्काल ही आकार के योग से कृष्णाचल की भावना करें। फिर स्थिरतापूर्वक साधना से योगी बुद्ध हो जाता है॥ १ ॥

श्वेतं चाचलं ध्यायात् पीतं वा रक्तम् एव वा।
श्यामं वाचलं ध्यायाद् द्वेषवज्र्यादिसम्पुटम्॥ २ ॥

श्वेताचल की भावना करें, पीताचल अथवा रक्ताचल अथवा श्यामाचल की भावना करनी चाहिए जो द्वेषवज्री के साथ सम्पुटित रहते हैं॥ २ ॥

मध्ये पञ्चाचलानां वै गृहीत्वैकं विभावयेत्।
प्रज्ञां तु तत्कुलीनां तु अन्यां वाथ भावयेत्॥ ३ ॥
सिध्यते तेन योगेन योगी शीघ्रं न संशयः।
प्रज्ञया रहितं वाथ भावयेत् सुसमाहितः॥ ४ ॥
भावनाबलनिष्पत्तौ बोधिराज्यम् अवाप्नुते॥ ५ ॥

मध्य में पञ्चाचलों में से एक की भावना करनी चाहिए। तत्कालीन प्रज्ञा को अथवा अन्य की भावना करें। उस योग से योगी शीघ्र ही सिद्ध हो जाते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है। प्रज्ञा से रहित होकर भी एकाग्र होकर भावना करनी चाहिए।

भावना बल के निष्पत्ति से वह योगी बोधि राज्य को पा सकता है॥ ३-५ ॥

अथ भगवत्य् आह॥

भगवती ने कहा।

विशुद्धिं देवतायास् तु श्रोतुम् इच्छामि नायक।
पूर्वोक्तामण्डलानां तु विशुद्धिं मे वद प्रभो॥ ६ ॥

हे नायक! देवता की विशुद्धि के विषय में मैं सुनना चाहता हूँ। और पूर्वोक्त मण्डलों की विशुद्धि के विषय में भी कृपया आप बतायें॥ ६ ॥

अथ भगवान् आह॥

भगवान् ने कहा।

अथातः संप्रवक्ष्यामि विशुद्धिं सर्वशोधनम्॥ ७ ॥

अब, मैं सर्वशोधन विशुद्धि के विषय में बताने जा रहा हूँ॥ ७ ॥

तत्र चतुरस्त्रं चतुर्ब्रह्मबिहारी। चतुर्द्वारं चतुःसत्यं। चतुस्तोरणं चतुर्ध्यानम्। अष्टौ स्तम्भा आर्याष्टाङ्गो मार्गः। एकपुटं चित्तैकाग्रता। पद्मं योनिः। विश्ववर्णं विश्वनिर्माणात्। नव नवाङ्गप्रवचनानि। दिक्षु रक्तं महारागात्। विदिक्षु पीतश्यामशाद्वलकृष्णानि ब्रह्मवैश्यक्षत्रिय-शुद्रजातित्वात्। चन्द्रसूर्यौ शुक्रशोणिते। खड्गो मध्ये कृष्णाचलचिह्नम्, कर्त्रिर् विश्ववज्राः पुर्वादिदिक्षु श्वेताचलादीनाम्, आग्नेयादिविदिक्षु मोहवज्र्यादीनाम्॥

चतुरस्त्र चार ब्रह्मबिहारी। चार द्वार चतुःसत्या चतुस्तोरण चतुर्ध्यान। आठ स्तम्भ आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग। एक पुट चित्त की एकाग्रता। पद्म योनि है। विश्वनिर्माण से विश्व वर्ण है। नव नवाङ्ग प्रवचन। दिशाओं में रक्त है महाराग के कारण। विदिशायें है - जीत, श्याम, शाद्बल, कृष्ण- ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय और शूद्रजाति के कारण। चन्द्र और सूर्य

शुक्र और शोणित। खड्ग मध्य में कृष्णाचल चिह्न। कर्त्री विश्ववज्रा। पूर्व आदि दिशाओं में श्वेताचल आदि की ओर आग्नेय आदि विदिशाओं में मोहादि वज्री आदी की स्थिति है। यही मण्डल विशुद्धि है॥ ८ ॥

इति मण्डलविशुद्धिः॥ ८ ॥

भावनाशुद्धिर् उच्यते॥

भावना की शुद्धि बताते हैं।

प्रथमं पूजा पुण्यसम्भारो विशिष्टं कर्म। शून्यता ज्ञानसम्भारो मरणं विशिष्टम्। स्वच्छदेहो ऽन्तराभवदेहः। कूटागारपर्यन्तं बुद्धभुवनम्। पद्मं योनिश्। चन्द्रसूर्यौ शुक्रशोणिते॥ ९ ॥

प्रथम पूजा - पुण्य संभार है जो विशिष्ट कर्म है। शून्यता - ज्ञान सम्भार है जो विशिष्ट मरण है। स्वच्छदेह अन्तराभव देह है। कूटागार पर्यन्त बुद्ध का भुवन है। पद्म ही योनि है। चन्द्र सूर्य शुक्र और शोणित हैं॥ ९ ॥

हूं कृतिर् मातुः पितुर् अन्तराभवचित्तम्, अक्षोभ्यः पिता मामकी माता। अनयोर् अन्योन्यानुरागणं दृष्ट्वा पितरि द्वेषं कृत्वा मातर्य् अनुरागं च, मोहेन सत्त्वचित्तवत् संक्रमेत्। पद्मान् निर्गतः पोतः पितृमारणं तत्पदप्राप्तये मातृग्रहणं जन्मान्तरवात्सल्याद् विशिष्टसुखाय सो ऽपि पुत्राञ् जनयति दुहितृंश् च कामयेत् जन्मान्तरवात्सल्याद् विशिष्टसुखाय॥ १० ॥

हूँ कार ही माता पिता का अन्तराभव चित्त है। अक्षोभ्य पिता और मामकी माता है। इन दोनों का एक दूसरे का अनुराग देखकर पिता में द्वेष कर, माता में अनुराग तथा मोह से सत्त्व चित्त के तरह संक्रमण करें। पद्म से निर्गत पोत है। पितृ मारण उस पद की प्राप्ति के लिए माता का ग्रहण जन्मान्तर वात्सल्य होने से विशिष्ट सुख के लिए वह भी पुत्र को पैदा करती है। पुत्री को भी। श्वेताचल और मोहवज्री आदि भी। पुत्र की पितृ मारण हैं जो शंसय में हैं। वे शत्रु ही है अतः इन्हें मारना चाहिए। दुहिता की कामना करें। जन्मान्तर के वात्सल्य होने से विशिष्ट सुख के लिए॥ १० ॥

खड्गः प्रज्ञा पाश उपाय। अथवा पाशः प्रज्ञा खड्ग उपायः। उभयोः समरसीकरणं तर्जनी। वामाधोदृष्टिः सप्तपातालपालनम् सव्योर्ध्वदृष्टिः सप्तब्रह्माण्डपालनम्। वामभूगतजानुः पृथ्वीपालनम्।

सव्यसंप्रहारपदं सर्वमारत्रासनम्। ब्रह्मा स्कन्धमारः। शिवः क्लेशमारः। विष्णुर् मृत्युमारः। शक्रो देवपुत्रमारः॥ ११ ॥

पृथ्वी सकलमर्त्यकन्या। उपभोगः कुमारः। दीर्घस्थितिः पद्मासनः। योनिजः, चन्द्रसूर्यासनः। शुक्रशोणितजः पुरुषरूपं भावः, स्त्रीरूपम् अभावः। नीलो विज्ञानं, श्वेतो रूपं, पीतो वेदना, रक्तः संज्ञा, श्यामः संस्कारः। अथवा नील आकाशं, श्वेतो जलं, पीतः पृथ्वी, रक्तो वह्निः, श्यामो वातः। यथा भगवतां तथा भगवतीनाम्॥ १२ ॥

पृथिवी सभी की मर्त्यकन्या है। उपभोग ही कुमार है। दीर्घस्थिति ही पद्मासन है। योनिज चन्द्रसूर्या सना शुक्र-शोणित से पुरुष रूप भाव है। स्त्री रूप अभाव है। नील विज्ञान है। श्वेत रूप है। पीला वेदना है। रक्त संज्ञा है। श्वास संस्कार है। अथवा नील आकाश है। श्वेत जल है। पीत पृथ्वी है। रक्त वह्नि है। श्याम वात है। जैसे भगवान् का है वैसा ही भगवती की भी है ॥ १२ ॥

अथवा नीलः सुविशुद्धधर्मधातुज्ञानम्, श्वेत आदर्शज्ञानम्, पीतः समताज्ञानम्, रक्तः प्रत्यवेक्षणाज्ञानम्, श्यामः कृत्यानुष्ठानज्ञानम् ॥ १३ ॥

अथवा नील सुविशुद्ध धर्मधातु ज्ञान है। श्वेत आदर्श ज्ञान है। पीत समता ज्ञान है। रक्त प्रत्यवेक्षणा ज्ञान है। श्याम कृत्यानुष्ठान ज्ञान है॥ १३ ॥

एक एव जिनः शास्ता पञ्चरूपेण संस्थितः।
प्रज्ञापारमिता चैका पञ्चरूपेण संस्थिता॥ १४ ॥

एक ही जिन तथागत शास्ता पाँच रूपों से अवस्थित हैं। एक प्रज्ञापारमिता ही पाँच रूपों से अवस्थित है॥ १४ ॥

इत्येकल्लवीराख्ये श्रीचण्डमहारोषणतन्त्रे विशुद्धिपटलः पञ्चदशमः॥

इस प्रकार एकल वीर नामक श्रीचण्डमहारोषण तन्त्र में
१५वाँ विशुद्धि पटल समाप्त हुआ।

पटलः १६

अथ भगवत्य् आह॥

भगवती कहती है।

कथम् उत्पद्यते लोकः कथं याति क्षयं पुनः।
कथं वा भवेत् सिद्धिर् ब्रूहि त्वं परमेश्वर॥ १ ॥

यह लोक कैसे समुत्पन्न होता है। कैसे क्षय को प्राप्त होता है। और सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं हे परमेश्वर! आप बतायें॥ १ ॥

अथ भगवान् आह॥

भगवान् कहते हैं।

अविद्याप्रत्ययाः संस्काराः।

अविद्या के कारण संस्कार होते हैं।

संस्कारप्रत्ययं विज्ञानम्।

संस्कारों से विज्ञान उत्पन्न होता है।

विज्ञानप्रत्ययं नामरूपम्।

विज्ञान से नामरूप होते हैं।

नामरूपप्रत्ययं षडायतनम्।

नामरूप से षडायतन होते हैं।

षडायतनप्रत्ययः स्पर्शः।

षडायतनों से स्पर्श उत्पन्न होता है।

स्पर्शप्रत्यया वेदना।

स्पर्श से वेदना होती है।

वेदनाप्रत्यया तृष्णा।

वेदना से तृष्णा उत्पन्न होती है।

तृष्णाप्रत्ययम् उपादानम्।

तृष्णा से उपादान होते हैं।

उपादानप्रत्ययो भवः।

उपादान से भवकी उत्पत्ति होती है।

भवप्रत्यया जातिः।

भव से जाति उत्पन्न होती है।

जातिप्रत्यया जरामरणशोकपरिदेवदुःखदौर्मनस्योपायासाः। एवम् अस्य केवलस्य महतो दुःखस्कन्धस्य समुदयो भवति॥ २ ॥

जाति से जरा, मरण, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य आदि दोष उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार इस महान् दुःख समुदाय की उत्पत्ति होती है॥ २ ॥

एवम् अप्य् अविद्यानिरोधात् संस्कारनिरोधः।

इसी प्रकार इसके (विपरीत) – अविद्या के निरोध से संस्कार निरुद्ध होता है।

संस्कारनिरोधाद् विज्ञाननिरोधः।

संस्कार के निरोध से विज्ञान निरुद्ध होता है।

विज्ञाननिरोधान् नामरूपनिरोधः।

विज्ञान के निरोध से नामरूप निरुद्ध होता है।

नामरूपनिरोधात् षडायतननिरोधः।

नामरूप के निरोध से षडायतन निरुद्ध होते हैं।

षडायतननिरोधात् स्पर्शनिरोधः।

षडायतन के निरोध से स्पर्श निरुद्ध होता है।

स्पर्शनिरोधाद् वेदनानिरोधः।

स्पर्श के निरोध से वेदना का निरोध होता है।

वेदनानिरोधात् तृष्णानिरोधः।

वेदना के निरोध से तृष्णा का निरोध होता है।

तृष्णानिरोधाद् उपादाननिरोधः।

तृष्णा के निरोध से उपादान का निरोध होता है।

उपादान निरोधाद् भवनिरोधः।

उपादान के निरोध से भव का निरोध होता है।

भवनिरोधाज् जातिनिरोधः।

भव के निरोध से जाति का निरोध होता है।

जातिनिरोधाज् जरामरणशोकपरिदेवदुःखदौर्मनस्योपायासा निरुध्यन्ते। एवम् अस्य केवलस्य महतो दुःखस्कन्धस्य निरोधो भवति॥ ३॥

जाति के निरोध से जरा, मरण, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य आदि विषयों का ही निरोध हो जाता है। केवल इन महान् दुःख स्कन्ध (समुदाय) का ही निरोध होता है॥ ३ ॥

प्रतीत्योत्पद्यते लोकः प्रतीत्यैव निरुध्यते।
बुद्ध्वा रूपद्वयं चैतद् अद्वयं भाव्य सिध्यति॥ ४ ॥

कारण से ही लोक उत्पन्न होता है। कारण से ही लोक निरुद्ध भी होता है। इन दो प्रकारों को जानकर और अद्वय की भावना करने से सिद्धि होती है॥ ४ ॥

अथ भगवती उवाच॥

भगवती कहती है।

कथयतु भगवान् अविद्यादिविवेचनम्॥

अविद्या आदि का वास्तविक रहस्य क्या है आप, हे भगवन् बतायें।

अथ भगवान् आह॥

भगवान् कहते हैं।

त्रिपरिवर्तम् इदं चक्रम् अतीतादिप्रभेदतः।
द्वादशाकारम् आख्यातं धर्मं सर्वजिनैर् इह॥ ५ ॥

तीन प्रकार के परिवर्त रूप यह चक्र अतीत आदि भेदों से है, जो १२ आकार वाला है, जिसे धर्म के रूप में भगवान् तथागत ने कहा है॥ ५ ॥

तत्राविद्या हेयोपादेयाज्ञानं। मरणानन्तरं धन्व रूपं चित्तं शरीराकारं भवतीत्य् अर्थः॥ ६ ॥

हेयोपादेय ज्ञान ही अविद्या है। मृत्यु के बाद धन्वरूप चित्त ही शरीराकार होकर दीखता है यही अर्थ है॥ ६ ॥

तस्मात् संस्कारो भवति स च त्रिविधः। तत्र कायसंस्कार आश्वासप्रश्वासौ। वाक्यसंस्कारो वितर्कविचारौ। मनःसंस्कारो रागद्वेषमोहाः। एभिर् युक्ताविद्या श्वसति प्रश्वसति वितर्कयति स्थूलं गृह्णाति विचारयति सूक्ष्मं गृह्णाति। अनुरक्तो भवति द्विष्टो मुग्धश् च॥ ७ ॥

उससे संस्कार होता है वह तीन प्रकार का है। काय संस्कार आश्वास और प्रश्वास ही हैं। वाक्संस्कार वितर्क और विचार हैं। मनः का संस्कार राग-द्वेष-मोह हैं। इनसे संयुक्त अविद्या श्वास लेती है, प्रश्वास लेती है, वितर्क करती है, स्थूल का ग्रहण करती है, विचार करती है, सूक्ष्म को ग्रहण करती है। अनुरक्त होती है, मुग्ध तथा द्वेष भी वह अविद्या करती है॥ ७ ॥

तस्माद् विज्ञानं भवति। षट्प्रकारं चक्षुर्विज्ञानं श्रोत्र घ्राण जिह्वा काय मनोविज्ञानं च। एभिर् युक्ताविद्या पश्यति श्रृणोति जिघ्रति भक्षति स्पृशति विकल्पयति॥ ८ ॥

उस संस्कार से विज्ञान होता है। वह ६ प्रकार का है - श्रोत्र विज्ञान, घ्राण - जिह्वा - काय - मनोविज्ञान हैं। इनसे युक्त होकर अविद्या देखती है, सुनती है, गन्ध लेती है, खाती है, स्पर्श करती है और विकल्प करती है॥ ८ ॥

तस्मान् नामरूपम्। नाम चत्वारो वेदनादयः। रूपं रूपम् एवेति। द्वाभ्याम् अभिसंक्षिप्य पिण्डयित्वा नामरूपेत्य् उक्तम्। उपादान पञ्चस्कन्धरूपेणाविद्या परिणमतीत्य् अर्थः। तत्र वेदना त्रिविधा सुखा, दुःखा, अदुःखासुखा चेति। संज्ञा वस्तूनां स्वरूपग्रहणान्तराभिलापः। संस्काराः सामान्यविशेषावस्थाग्राहिनश् चित्तचैत्ताः। विज्ञानानि पूर्वोक्तान्य एव। रूपं चतुर्भूतात्मकम्। पृथिवी गुरुत्वं कक्खटत्वम्। आपो द्रवत्वम् अभिष्यन्दितत्वम्। तेज उष्मत्वं परिपाचनत्वम्। वायुर् आकुञ्चनप्रसारण लघुसमुदीरणत्वम्॥ ९ ॥

उस संस्कार से नामरूप होता है। नाम चार वेदना आदि हैं। रूप रूप ही है। दोनों को लेकर पिण्ड बनाकर नाम रूप कहा गया है। उपादान ही पञ्च स्कन्ध के रूप में अविद्या परिणत होती है, यही अर्थ है। वेदना तीन प्रकार की होती है। सुखा वेदना। दुःखा वेदना। अदुःखा – अमुखा वेदना। संज्ञा का अर्थ पदार्थ जब किसी रूप में परिणत होता है तब उसकी संज्ञा (नाम) होती है। सामान्य विशेष अवस्था के ग्राहक चित्त चैत्र ही संस्कार हैं। विज्ञान पहले कहे जा चुके हैं। चतुर्भूतात्मक ही रूप है। पृथिवी गुरुत्व युक्त ही है। जल द्रव रूप है जो बहता है। तेज उष्मा है जो पकाता है। वायु आकुञ्चन और प्रसारण से लगा हुआ है जो तीव्रता से बहता है॥ ९ ॥

तस्माच् छडायतनानि चक्षुःश्रोत्रघ्राणजिह्वाकायमनांसि। एभिर् युता पूर्ववत् पश्यतीत्यादि।

अतएव उससे षडायतन होते हैं: – चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय एवं मन हैं। इनसे संयुक्त होकर अविद्या पहले के तरह काम करती है।

तस्मात् स्पर्शः। रूपशब्दगन्धरसस्पर्शधर्मधातुसमापत्तिः।

उससे स्पर्श उत्पन्न होता है। रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श, धर्म धातु समापत्ति ही वह है।

ततस् तृष्णा सुखाभिलाषः।

उससे तृष्णा होती है। वह सुख की अभिलाषा है।

तत उपादानं तत्प्रापकं कर्म।

उपादान उसको उपलब्ध कराने वाला कर्म।

ततो भवो गर्भप्रवेशः।

उससे भव। भव का अर्थ गर्भ प्रवेश है।

ततो जातिः प्रकटीकरणाभिनिष्पत्तिः।

उपादानपञ्चस्कन्धलाभः॥ १० ॥

उससे फिर जन्म होता है। अर्थात् प्रकटीकरण पूर्व अभिनिष्पत्ति ही है। उसी से पञ्च उपादान स्कन्धों का लाभ होता है॥ १० ॥

ततो जरा पुरातनीभावः। मरणं चित्तचैत्तनिरोधः। ततो जरामरणचिन्तयन् शोकाकुलो भवति। मुक्तिर् मया न पर्येषितेति।

परिदेवते। व्याध्याद्युपद्रुतश् च दुःखी भवति। तद् एवं पुनः पुनर् मनसि योजयन् दौर्मनस्यी भवति। दुर्मना अपि केनाप्य् उपद्रुत उपायासी भवति॥ ११ ॥

फिर जरा – वृद्धावस्था। मरण चित्त चैत्रों का निरोध। अब जरामरण का चिन्तन करते हुए शोकाकुल होता है। मुक्ति की मैंने खोज नहीं किया है इस प्रकार व्यथित होता है। व्याधि आदि के आने से दुःखी होता है। उसको बारम्बार मन में लाकर दौर्मनस्वी हो जाता है। उसको और बढ़ाने से बारम्बार चिन्तन से उपायासी होता है॥ ११ ॥

अयम् अर्थः। अविद्यादिषडायतनपर्यन्तेनान्तराभवसत्त्व एकत्रैव स्थितस् त्रैलोक्यं पश्यन् पश्यति स्त्रीपुरुषान् अनुरक्तान्। ततो ऽतीतजातिकृतकर्मणा प्रेरितो यज् जाताव् उत्पन्नो भविष्यति तज्जातिस्त्रीपुरुषौ रतौ दृष्ट्वातीव तस्य तयोः स्पर्श उत्पद्यते॥ १२ ॥

इसका यह अर्थ है: अविद्या आदि षडायतन पर्यन्त प्रतीत्य समुत्पाद द्वारा अन्तरा भव सत्त्व एक ही जगह रहकर त्रैलोक्य को देखता हुआ अनुरक्त होते हुए स्त्री पुरुषों को देखता है। फिर अतीत जन्म के कर्मों से प्रेरित होकर जिस कुल में उत्पन्न होता है उन्हीं के स्त्री पुरुषों का अनुरक्त देखकर अत्यधिक उसमें स्पर्श उत्पन्न होता है॥ १२ ॥

तत्र यदि पुरुषो भविष्यति तदात्मानं पुरुषाकारं पश्यति। भाविमातरि परमानुरागो भवति। भाविपितरि च महाविद्विष्टः। रागद्वेषौ च सुखदुःखे वेदने। ततः केनाकारेणानया सार्धं रतिं करोमीति चिन्तयन्न अदुःखासुख वेदनतया व्यामुग्धो भवति॥ १३ ॥

यदि वहाँ वह पुरुष होता है तो अपने को पुरुषाकार के रूप में देखता है। भावी माता में परम अनुराग होता है। भावी पिता में विद्वेष होता है। राग द्वेष सुख दुःख रूप वेदनायें हैं। फिर किस आकार को लेकर इसके साथ मैं रति करूँगा इस प्रकार चिन्तर करते हुए असुख, अदुःख वेदनाओं के कारण मुग्ध होता है॥ १३ ॥

ततः पूर्वकर्मवातप्रेरितो महातृष्णया एतां रमामीति कृत्वा कष्टेन को हि पुरुषो मम स्त्रियं कामयते इति कृत्वा तारासंक्रमणवद्

भाविपितृशिरोमार्गेण प्रविश्य तस्य शुक्राधिष्ठितं चित्तम् अधिष्ठाय भाविमातरं कामयन्तम् आत्मानं पश्यति सुखकारणम् उपाददाति ततः शुक्रेण समरसीभूय महारागानुरागेणवधूतीनाड्या पितुर् वज्रान् निर्गत्य मातुः पद्मसुषिरस्थवज्रधातवीश्वरीनाड्या कुक्षौ जन्मनाड्यां स्थितः। क्षरणान्तरितवत् ततो भवो भवति॥ १४ ॥

फिर पूर्व कर्मों के वेग से प्रेरित होकर महातृष्णा के कारण इसके साथ रमण करुंगा इस चिन्ता से कष्ट के साथ कौन पुरुष है जो मेरी स्त्री की कामना करता है इस प्रकार ताराओं के संक्रमण के तरह ही भावी पिता के शिर के मार्ग से होते हुए उसमें प्रविष्ट होकर उसके शुक्र के मार्ग में स्थित होता है। शुक्र में चित्त को लगाकर भावी माता को चाहते हुए अपने को देखता है – सुख के कारण के रूप में तथा उसे लेकर शुक्र के साथ एकाग्र होकर बड़े अनुराग से आकर्षित होकर अवधूती नाडी के द्वारा पिता के वीर्य से निकल कर माता के योनि में अवस्थित वज्र धातु ईश्वरी नाडी के मार्ग से पेट के अन्दर गर्भाशय नाडी में स्थित होता है। उसके बाद उसका जन्म के लिए मार्ग प्रशस्त होता है॥ १४ ॥

स च क्रमेण कललार्बुदघनपेशीशाखायुतो नवभिर् दशभिर् वा मासैर् येनैव मार्गेण प्रविष्टस् तेनैव मार्गेण निर्गतो। जातिर् भवति ॥ १५ ॥

फिर क्रमशः कलल, अर्बुद, घन, पेशी, शाखा आदि अवस्थाओं को पार करते हुए नौ या दश महीनों में जिस मार्ग से प्रवेश किया था उसी मार्ग से निकलता है। वही जन्म कहलाता है॥ १५ ॥

यदि वा स्त्री भविष्यति तदा भाविपितर्य् अनुरागो भवति। भाविमातरि च द्वेषः। तत आत्मानं स्त्रीरूपं पश्यति। भाविमातृशिरोमार्गेण प्रविश्य पद्मे पतित्वा शुक्रेण मिश्रीभूय तस्या एव जन्मनाड्यां तिष्ठति। ततः पूर्ववन् निगच्छति जायते॥ १६ ॥

यदि वह स्त्री होती है तो भावी पिता में अनुराग होता है और भावी माता में द्वेष हागा। फिर अपने को स्त्री रूप में देखता है। भावी माता के शिर के मार्ग से प्रविष्ट होकर पद्म में गिरकर शुक्र के साथ मिलकर उसी के जन्म

नाडी में रहता है। फिर पहले के तरह ही निकलता है। जन्म होता है॥ १६ ॥

तद् एवम् अविद्यादिभिर् लोका जायन्ते। लोकाश् च पञ्च स्कन्धा एव। ते च दुष्ठु संसारिणः पञ्च स्कन्धाः। न च दुःखेन कार्यम् अस्ति मोक्षार्थिनाम्। अविद्यादि निरोधात् स्कन्धाभावः॥ १७ ॥

इस प्रकार अविद्या आदि से संसार होता है। लोक का अर्थ पञ्च स्कन्ध ही हैं। वे पापी संसारियों के पञ्च स्कन्ध हैं। मोक्षार्थी के लिए दुःख से कोई काम नहीं है। अविद्या आदि के निरोध से स्कन्धों का अभाव होता है॥ १७ ॥

शून्यता तुच्छता। न च तुच्छेन कार्यं मोक्षार्थिनः। तस्मान् न भावो मोक्षो नाप्य् अभावः। तस्माद् भावाभावविरहितं प्रज्ञोपायसम्पुटम्। महासुखरूपिणं श्रीमदचलनाथात्मकं चतुरानन्दैकमूर्तिचित्तं भवनिर्वाणाप्रतिष्ठितं मोक्षः॥ १८ ॥

शून्यता तुच्छता है। मोक्षार्थी के लिए उसका कोई काम नहीं है। अत भाव और अभाव दोनों ही मोक्ष नहीं है। इसका तात्पर्य है – भावाभाव रहित प्रज्ञोपाय सम्पुट है। महासुखरूपी श्री अचल नाथात्मक चतुरानन्दैक मूर्ति चित्त में तथा भवनिर्वाण में मोक्ष प्रतिष्ठित है॥ १८ ॥

रागेणोत्पद्यते लोको रागक्षयात् क्षयं गतः।
अचलार्थपरिज्ञानाद् बुद्धसिद्धिः समृध्यति॥ १९ ॥

राग से लोक उत्पन्न होता है, राग के क्षय से क्षीण होता है। अचलार्थ के परिज्ञान से बुद्धत्व की सिद्धि तथा समृद्धि (ज्ञान) उत्पन्न होती है॥ १९ ॥

न चलति प्रज्ञासङ्गे सुखरसमुदितं तु यच् चित्तम्।
विधुनन् विरमसुमारं तद् अचलसंज्ञया च कथितम्॥ २० ॥

प्रज्ञा के सङ्ग होने पर भी सुख के रस में डुबा हुआ चित्त यदि नहीं हिलता है तो विरजानन्दात्मक अवस्था में स्थित वह चित्त ही उस अवसर पर अचल नाम से विख्यात है ऐसा जानना चाहिए॥ २० ॥

इत्य् एकल्लवीराख्ये श्रीचण्डमहारोषणतन्त्रे प्रतीत्यसमुत्पादपटलः षोडशमः॥

इस प्रकार एकल वीर नामक श्रीचण्डमहारोषण तन्त्र में प्रतीत्य समुत्पाद नामक १६वाँ पटल समाप्त हुआ॥

पटलः १७

अथ भगवत्य् आह॥

भगवती कहती है।

नाथेदं सम्पुटं शुक्ररक्तलिङ्गभगस्तने।

प्रवृद्धे शक्यते कर्तुं व्याधिवृद्धत्वनाशनात्॥ १ ॥

स्त्रीमनोवश्यताभावात् तद्वद् व्याकरणाद् अपि।

शुक्रस्य स्तम्भनाद् रक्तद्रावणाद् ब्रूहि योगकम्॥ २ ॥

हे नाथ! यह सम्पुट क्या है। शुक्र, रक्त, लिङ्ग, भग और स्तनों के बढ़ने पर क्या व्याधि, वार्धक्य आदि का नाश किया जा सकता है?

स्त्रियों के मनों के वशिता के अभाव में तथा उसे चञ्चल कहकर व्याख्या करने के कारण भी क्या शुक्र का स्तम्भन और रज (रक्त) के बहाने से योग्य सिद्ध होता है? कृपया आप बतायें॥ १-२॥

अथ भगवान् आह॥

भगवान् कहते हैं।

साधु साधु कृतं देवि यद् अहम् अध्येषितस् त्वया।

वक्ष्ये नानाविधं तच् च शृणु लोकार्थसिद्धये।

शरीरं शोधयेद् आदौ पश्चात् कर्म समारभेत्॥ ३ ॥

बहुत अच्छा, बहुत अ%छा आपने मुझे प्रेरित किया। हे देवि! अनेक प्रकार के विषयों को मैं बताता हूँ - लोक कल्याण के लिए। इसके लिए। सबसे पहले शरीर की बुद्धि की जाती है फिर कर्म का आरम्भ किया जाना चाहिए॥ ३ ॥

शुक्ले वस्त्रे कृतं वर्णं श्रेष्ठम् उगावलितं भवेत्।

त्रिफलाक्वाथम् आगृह्य यवक्षारं पलाशकं॥ ४ ॥

भक्षयित्वा गडं पानात् कृम्यजीर्णप्रणाशनम्।
केतक्याश् च रसं तैलं हिलमोचीरससैन्धवम्॥ ५ ॥
पीत्वा लिह्वा च तद् रौद्रे यूकानाशो वपुर्वृतात्।
केतक्याश् च रसं तैलं पिबेल् लवणसम्पुटम्॥ ६ ॥
रौद्रे भ्रमणयोगेन भवेल् लवणनाशनम्।
हिलमोचीरसं किंचित् सैन्धवेन च सम्पुटम्॥ ७ ॥
छायायां च स्थितिं कृत्वा भवेत् पित्तस्य नाशनम्।
केतक्याश् च रसं तैलान् कूचमूलं च गोपयः॥ ८ ॥
पानयोगाद् भवेत् तैलनाश एव न संशयः।
रसं कूष्माण्डमञ्जर्याः पिबेल् लवणसम्पुटम्॥ ९ ॥
चूर्णनाशो भवेद् धन्याश्लेष्माणं मधु नश्यतः।
एकैकं द्विदिनं कुर्यात् पश्चाद् औषधम् आरभेत्॥ १० ॥
तेनैव फलदं तच् च निष्फलं चान्यथा प्रिये।
शाल्मलीवल्कलं चूर्णेत् तप्तमण्डेन भक्षयेत्॥ ११ ॥
सप्तधा मन्त्रितं कृत्वा प्रातर् वा भोजनक्षणे।
प्रत्यहं यावज्जीवं तु शुक्रशोणितवर्धनम्॥ १२ ॥

सफेद वस्त्र पहनने पर व्यक्ति उज्वलित एवं श्रेष्ठ होता है। त्रिफला के क्वाथ को पीकर यव पलाश आदि का भक्षण करके फिर गुड़ खाने से कृमि और अजीर्ण नष्ट होते हैं। केतकी का रस तेल में मिलाकर सिलाजित के साथ रख दें फिर थोड़ा सा नमक डालकर पीने से एवं उसे शरीर या बालों में मलने से सभी यूक आदि नष्ट होते हैं। और सिलाजित आदि के रस को पिये नमक मिलाकर उससे शरीर का क्षार-अम्ल पित्त नष्ट हो जाता है। उसी रस को शीतल जगह पर रखकर दूसरे दिन पीने से पित्त का नाश होता है। साथ ही उसके पान से शरीर में स्थित तैलीय पदार्थ नष्ट होते हैं। कुष्माण्ड के रस के साथ शिलाजित को पीने से चूर्ण नष्ट होते हैं। एक दिन दो दिन इस प्रकार पीने के बाद ही अन्य औषधियों का सेवन करना चाहिए। तभी वह फलदायक होता है अन्यथा निष्फल होगा। शाल्मली वृक्ष के त्वचा के चूर्ण को तप्त मॉड के साथ मिलाकर पीने से शरीर में शक्ति आ जाती है। इस प्रकार अभिमन्त्रित

करके भोजन के साथ लेने से जीवन पर्यन्त शुक्र और रक्त की वृद्धि होती है॥४-१२ ॥

ॐ चण्दमहारोषण इदं दिव्यामृतं मे कुरु हूं फट्॥ यह अभिमन्त्रित करने का मन्त्र है।

ऋटितं नारिकेलं च नवनीतं चापि माहिषं।
वास्यमण्डेन सम्युक्तं मेदं शूकरसम्भवं॥ १३ ॥
लिङ्गं कर्डस्तनानां तु भगस्यापि विमर्दनैः।
सर्वकायविमर्दैश् च वर्धन्ते ते न संशयः॥ १४ ॥
निर्नखां तर्जनीं कृत्वा म्रक्षयित्वा च तेन वै।
योनिमध्ये तु प्रक्षिप्य स्फाण्डयेद् रन्ध्रवर्धनम्॥ १५ ॥
दाडिमस्य त्वचः कल्कैः पचेत् सर्षपतैलकम्।
स्तनं विमर्दितं वर्धेन् मुण्डिरीक्वाथनश्यतः॥ १६ ॥
श्वेतसर्षपवचाद्यश्वगन्धाबृहतीकृतैः।
कल्कैर् संमर्दयेल् लिङ्गं स्तनं कर्णं च वर्धते॥ १७ ॥
हस्तिपिप्पलीश्वेतापराजिताकृतैस् तथा।
माहिष्यनवनीतेन मर्दनाल् लिङ्गवर्धनम्॥ १८ ॥
शेवालकटुरोहिणीमाहिष्यनवनीतेन-
मर्दनाल् लिङ्गवर्धनं॥ १९ ॥
धुस्तूररसेनाश्वगन्धामूलं पिष्ट्वा महीष्यनव-
नीतमिश्रितम्, धुस्तूरफलकोटरे ऽहोरात्रं स्थापयेत्।
ततो लिङ्गं माहिष्यशकृता दृढं मर्दयित्वा।
पूर्वोक्तेन रात्रित्रयं लिप्तवा मर्दयेद् वर्धते॥ २० ॥

सुखा हुआ नारिकेल, नवनीत जो भैस के दूध से बना हो उसे मॉड से मिलाकर सूकर के मेदा मिला देने से जो रस होता है उससे लिङ्ग, स्त्रियों के स्तन और योनि में लगाकर मर्दन करने से, तथा पूरे शरीर का मालिस करने से भी वे पुष्ट होते हैं।

तर्जनी के नाखुन को काटकर उससे वह रस निकाल कर स्त्री योनि के भीतर रख देने से वह छेद बड़ा हो जाता है।

दाडिम के त्वचा को सरसों के तेल में पकाकर उस कालेपन पूर्वक मर्दन करने से स्तन बड़े, मजबूत एवं पुष्ट होता हैं।

सफेद सरसों के तेल में अश्वगन्धा को पकाकर उसका लेपन कर लिङ्ग का मर्दन करने से वह पुष्ट होता है साथ ही स्तन और अन्य अंग भी मर्दन से परिपुष्ट होते हैं। पिप्पली और श्वेत पराजित को भैस के नवनीत के साथ मिलाकर मर्दन करने से लिङ्ग की वृद्धि होती है। साथ ही शैवाल - कटुरोहिणी को भैस के नवनीत के साथ मिलाकर मर्दन करने से लिङ्ग की वृद्धि होती है। धत्तुर के रस के साथ अश्वगन्धा को पीसकर भैस के नवनीत से मिलाकर धतूर के पेड़ के किसी कोटर में अहोरात्र तक रखकर फिर लिङ्ग में लेप करके उसका मर्दन करने से वह मजबूत होता है॥ १३-२० ॥

इन्द्रगोपचूर्णे घृतं साधयित्वा माहिषं योन्यभ्यन्तरं लेपयेत्।
शिथिला योनिर् गाढा भवति॥ २१ ॥
पद्मबीज-उत्पलबीजमृणाल-
उशीरमुस्तकैस् तिलतैलं पाचयेत्। तेन भगाभ्यङ्गाद्
दौर्गन्ध्यशिथिल्यवैषम्योनत्वादिकं नाशयति॥ २२ ॥
निम्बत्वक्क्वाथेन भगं प्रक्षालयेत्।
निम्बत्वचा धूपयेच् च।
सौकुमारं सुगन्धि सुभगादिगुणोपेतं भवति॥ २३ ॥
हरितालभागाः पञ्च किंशुकक्षारभागैकं-
यवक्षारभागैकं कदलीक्षारभागैकं जलेन पिष्ट्वा,
लेपमात्रेण भगकक्षलिङ्गानां रोम नाशनम्॥ २४ ॥
ततो हलाहलसर्पपुच्छचूर्णमिश्रितं-
कटुतैलं सप्ताहस्थापितं, तेन लिङ्गादिकं म्रक्षयेत्।
न पुनः केशाः प्रादुर् भवन्ति॥ २५ ॥

इन्द्र गोप चूर्ण को घी के साथ मिलाकर योनि के भीतर लेपन करें। इससे शिथिल योनि मजबूत होती है। पद्म बीज को उत्पल बीज, उशीर और मूंग के तथा तिल के तेल के साथ पकाकर भग में गलाने से दुर्गन्ध, शैथिल्य, वैषम्य आदि का नाश होता है।

नीम के क्वाथ से भग का क्षालन करने से वह दुर्गन्ध आदि के नाश के साथ ही वह रोगों से मुक्त होता है।

हरित, किशुक, यव, कदली क्षार को समान मात्रा में मिलाकर पानी के साथ पीसकर लेप करने से उस स्थान के रोम-बाल नष्ट हो जाते हैं।

फिर विषैले सर्प के पूछ का चूर्ण बनाकर तेल में डाल दें फिर एक सप्ताह तक उस रखकर फिर उसका लेपन करने से वे केश फिर कभी नहीं उगते॥ २१-२५ ॥

महिषशूकरहस्तिकर्कटश्वेदतैलाभ्यां-
मर्दनात् स्तनादीनां वृद्धिः॥ २६ ॥
जातीपुष्पं तिलेन पिष्ट्वा भगम् उद्वर्तयेत्।
उच्छवसितं भवति॥ २७ ॥
माहिषनवनीतवचाकूठबालानागबलाभिर्-
मर्दनात् स्तनवृद्धिः।
तप्तोदकक्षालनाद् वर्धितलिङ्गसदृशं भवति॥ २८ ॥
दण्डोत्पलामूलं गव्यघृतेन पिबेत्।
ऋतुकाले गर्भिणी भवति॥ २९ ॥
अश्व गन्धामूलं घृतेन पिबेत्।
गर्भिणी भवति॥ ३० ॥
बलातिबलाशितशर्करातिलं माक्षिकमधुयुक्तं पिबेत्।
गर्भिणी भवति॥ ३१ ॥
बालामूलम् उदकेन पिष्ट्वा पिबेत्।
रक्तप्रवाहं नाशयति॥ ३२ ॥
यवचूर्णं गोमूत्रं सर्जरसं यष्टि मधु-
घृतेनोद्वर्तनात् सर्वगात्रं भद्रं भवति॥ ३३ ॥
वराहक्रान्तामूलम् ऋतुकाले कर्णे-
बन्धनाद् गर्भिणी भवति॥ ३४ ॥

कलम्बीशाकं भक्षयेच् छुक्रवृद्धिः। मधुरदधिभक्षणेन शुक्रवृद्धि। शुक्रशोणितभक्षणाच् छुक्रवृद्धिः। स्त्रीगूथं स्त्रीमूत्रेण गोलयित्वा पिबेच्

छुक्रवृद्दिः॥ ३५ ॥

आमलकीचूर्णं जलेन घृतेन मधुना वा विकाले ऽवलिहेत्। चक्षुष्यं तारुण्यं भवति प्रज्ञां च जनयति। आमलकीचूर्णं तिलचूर्णं घृतमधुना भक्षयेत् तथैव फलम्॥ ३६ ॥

गोरखतण्डुलामूलम् अश्वगन्धातिलयवान् गुडेन समरसीकृत्य भक्षयेत्। यौवनं जनयति॥ ३७ ॥

अर्जुनत्वक्चूर्णं दुग्धादिना भक्षयेद्। वर्षप्रयागेन त्रिशतायुः॥ ३८॥

महिष-सूकर-हस्ति-कर्कटों को तेल के साथ मिलाकर मर्दन करने से अङ्ग पुष्ट होते हैं। जाति पुष्प को तिल के साथ पीसकर भग में लगा दें। वह निरोग होता है।

महिष नवनीत को वचा के साथ मिलाकर नागवल्ली के साथ पिसकर लगाने से स्तनों की वृद्धि। उबले हुए पानी से शीतलकर धोने वह वृद्धि को प्राप्त होता है।

दण्ड उत्पला को घी के साथ पीने से स्त्री गर्भवती होतीहै।

बला, अतिबला, शर्करा और तिल का मधु के साथ पीने से स्त्री गर्भवती होती है।

बाला-मूल को जल के साथ पियें। रक्त प्रवाह रुक जाता है।

यव चूर्ण को गोमूत्र के साथ यष्टि मधु घी के साथ मिलाकर पीने से शरीर हल्का होता है।

वराह के द्वारा खाए हुए घास के मूल को कान में लगाने से स्त्री गर्भवती होती है।

कलम्बीशा को खाने से वीर्य बढ़ता है। मीठा दही खाने से शुक्र की वृद्धि होती है।

आँवला चूर्ण जल या घी या मधु के साथ विकाल में चक्षु के उपर लेपन करने से आँख तीक्ष्ण होते हैं। उसको खाने से भी वही फल मिलता है।

गोरख चावलों को अश्वगन्धा, यव, तिल के साथ मिलाकर खाने से यौवन उपलब्ध होता है। अर्जुन वृक्ष के त्वचा को दूध के साथ एक वर्ष खाने से तीन सौ वर्षों की आयु होती है॥ २६-३८ ॥

आमलकीरसपलैकं बाकुचीचूर्णकर्षैकं पिबेत् प्रातः।
जीर्णे क्षीरभोजनं। मासेन पञ्चशतायुः॥ ३९ ॥
बाकुचीचूर्णकर्षैकं तक्रेण जलेन काञ्चिकेन-
दुग्धेन वा पिबेत्। षण्मासेन यौवनाभ्युपेतः॥ ४० ॥
मुण्डरीचूर्णं घृतेन भक्षयेत्।
त्रिसप्ताहेन द्विरष्टवर्षाकृतिः॥ ४१ ॥

सनबीजचूर्णपलैकं रक्तशालिपलैकम् एकवर्णगावीक्षीरेण शरावद्वयेन रन्धयेत्। प्रथमं क्षीरशरावम् एकं क्षयं नीत्वा सनादिकं तत्र दत्त्वा पचेत्। ततो भक्षयेत्। जीर्णे दुग्धेन भोजयेत्। वातातपवर्जितः। सप्ताहत्रयं यावद् यथा क्रिया, तथोत्तरा क्रिया॥ ४२ ॥

ततः केशादयः पतन्ति पुनर् उत्तिष्ठन्ति।
ततो वलिपलितरहितो जीवति शतानि पञ्च॥ ४३ ॥
रक्तोगाटमूलं घृतमधुना बिडालपदमात्रं भक्षयेत्।
तथैव फलम्॥ ४४ ॥
आमलकीहरीतकीभृङ्गराजपिप्पलीमरीचलोहचूर्णानि-
मधुशर्कराभ्याम् उडुम्बरप्रमाणं गुडिकां कुर्यात्।
ततो गुलिकैकां भक्षयेत्। मासेन त्रिशतायुः॥ ४५ ॥
कुमारीपलम् एकं घृतदधियुक्तं भक्षयेत्।
सप्ताहेन त्रिशतायुः॥ ४६ ॥
यवतिलाश्वगन्धानागबलामाषान्-
द्विगुणगुडेन भक्षयेत्। महाबलो भवति॥ ४७ ॥
भद्रालीगुण्डकं त्रिगुणहरीतक्या एवं-
जलादिना भक्षयेत्। महाबलः स्यात्॥ ४८ ॥
सर्वत्रात्मानं देवताकारं भावयेत्, मन्त्रेण चौषधं-
समधितिष्ठेत्॥ ४९ ॥

अमला का रस बाकुची चूर्ण के साथ प्रातः पान करें। जीर्ण होने पर दूध पीये। इस प्रकार एक मास तक के प्रयोग से आयु लम्बी होती है।

बाकुची चूर्ण तक्र या जल अथवा काञ्जिक तथा दूध के साथ पीने से यौवन पुनः लौट आता है।

मुण्डरी चूर्ण को घी के साथ खाने से तीन सप्ताहों में १६ वर्ष का जोश आ जाता है।

सन बीज के चूर्ण के साथ रक्तशालीपल का चूर्ण को गाय के दूध के साथ मिला दें। फिर उसे पका दे फिर उसे खा जाय। बाहर हवा में न जाए। तीन सप्ताह तक उसी प्रकार रहें। इसके बाद केश गिर कर फिर उगते हैं। फिर वार्धक्य रहित होकर लम्बे आयु के साथ जीवन व्यतित करता है।

लाल उगाट के जड को घी और मधु मिलाकर थोड़ा भक्षण करें। फल वैसा ही है।

अमला, हरितकी, भृंगराज, पिप्पली, मरीच आदि चूर्ण को मधु शर्करा से मिलाकर छोटी गोली बनाकर प्रति दिन एक एक कर सेवन करें। एक महीने तक प्रयोग से लम्बी आयु होती है। एक सप्ताह तक कुमारीपल का दही और घी के साथ सेवन करें। यव, तिल, अश्व, गन्ध, नाग, बल और मासों को दो गुना गुड के साथ खायें। बलवान् हो जायेंगे। भद्राली गुण्डक को तीन गुने हरितकी के साथ जल से पी जाये। बलवान् होगा। सभी जगह अपने को देवता के रूप में चिन्तन करें। मन्त्र के साथ औषधि का सेवन करें॥ ३६-४६ ॥

इत्य् एकल्लवीराख्ये श्रीचण्डमहारोषणतन्त्रे शुक्रादिवृद्धिपटलः सप्तदशमः॥

इस प्रकार एकलवीर नामक श्रीचण्ड महारोषण तन्त्र में शुक्र आदि वृद्धि नामक १७वाँ पटल समाप्त हुआ।

पटलः १८

अथ भगवान् आह। एरण्डमूलं काञ्जिकेन पिष्ट्वा शिरो मर्दयेत्। शिरःशूलं विनाशयति॥ १ ॥

भगवान् कहते हैं। एरण्ड के जड को काँञ्जिक के साथ पीसकर शिर में लेप करने से शिरदर्द ठीक होता है॥ १ ॥

छागस्य गोर् नरस्य वा कोष्णमूत्रं ससैन्धवं कर्णं पूरयेत्। कर्णरोगनाशः। शुष्कमर्कटतैलं वा दद्यात्॥ २ ॥

छाग (बकरा) का मूत्र, बयल या मनुष्य के मूत्र को नमक के साथ मिलाकर कान में डालने से कान के रोग नष्ट होते हैं। अथवा सूखे हुए मक्के का तेल भी डाल सकते हैं - कान में॥ २ ॥

कतकः पिप्पली आमलकी हरिद्रा वचा शिशिरेण वटिकां कुर्यात्। तेनाञ्जनात् सर्वचक्षूरोगनाशः। मधुपिप्पल्या वाञ्जयेत्॥ ३ ॥

कर्णगूथं मधुनाञ्जयेत्। रात्र्यन्धनाशः॥ ४ ॥
कटकमधुनाञ्जयेत् सर्वाक्षिरोगनाशः।
काञ्जिकेन तैलं सैन्धवं दूर्वामूलं च कांसे निघृष्य मन्त्रं जपच्।
चक्षुशूरनाशः।
घोषफलं घ्रात्वा कङ्कोलमूलं तण्डुलोदकेन पिबेत्।
नस्यं च दद्यात्। नासिकया रक्तं न स्त्रवति॥ ५ ॥
शेफालिकामूलचर्वणाद् गलशुण्डीं विनश्यति॥ ६ ॥
गुञ्जमूलेन दन्तकीटविनाशः॥ ७ ॥
गोघृतं गव्यदुग्धं कर्कटपदं पचेत्।
पादम्रक्षणाद् दन्तकीटको नश्यति॥ ८ ॥

मूलकबीजं प्रियङ्गुं च रक्तचन्दनकुष्ठं पिष्ट्वोद्वर्तनान्-
मर्कटयादिर् विनश्यति॥ ९ ॥
हरिणमांसशुष्कं छागक्षीरेण पिबेत् पलम् एकम्।
क्षयरागनाशः॥ १० ॥

केतकी, पिप्पली, आमलकी, हल्दी, वचा का धूल बनाकर जला दे फिर उसका काजल बनाकर आँखों में लगाने से चक्षुरोग नष्ट होते हैं। अथवा मधु-पिप्पली भी लगा सकते हैं।

कर्णगूथ को मधु से लगाने से भी रतन्ध रोग नष्ट होता है।

कटक को मधु के साथ लगाने से आँख के सभी रोग नष्ट होते हैं। काञ्जीक के साथ तेल, नमक, दूव को कांस के बर्तन में घिसकर मन्त्र का जाप करने से चक्षु पीडा नष्ट होती है।

घोषफल को सूँघ कर कङ्कोल के जड़ को चावल धोए हुए पानी के साथ पीने से, नस बनाकर नाम में डालने से नाक से बहता खून बन्द हो जाता है। शेफाली के जड़ को चबाने से गलशुण्डी शान्त होती है। गुञ्ज के जड़ से दाँत के कीड़े मरते हैं।

गाय का घी, गो दूध को कर्कट के साथ पकाकर उसमें लगाने से दाँत के कीड़े नष्ट होते हैं।

मूला के बीज, प्रियङ्गु और रक्त चन्दन को पीसकर लगाने से कीड़े नष्ट होते हैं।

हरिण का मांस बकरी के दूध के साथ खाने से क्षय रोग नष्ट होता है॥ ३-१०॥

माहिष्यदधिभक्तभोजनाद् अतिसारनाशः।
आम्लभक्ताशनात् तथा॥ ११ ॥

भैस के दही के साथ भात खाने से अतिसार रोग नष्ट होता है। अम्ल के साथ भात खाने से भी अतिसार हट जाता है॥ ११ ॥

कुटजवल्कलभागद्वयं मरीचगुडशुण्डीनाम् एकभागं-
गव्यतक्रेण पिबेत्। ग्रहणीनाशः॥ १२ ॥

आमलकीपिप्पलीचित्रकम् आर्द्रकं पुरातनगुडं-
घृतं मधु च समं भक्षयेत्।
विकालकासश्वासविनाशनम्।
हरीतकीचूर्णं मधुना तथा॥ १३ ॥
खदिरीशाकेन यवयवागूं भक्षयेत्।
कुक्षिरोगनाशः स्यात्॥ १४ ॥
आर्द्रकं जीरकं दधिना मण्डेन वा-
पिबेत् लवणसहितम्। मूत्रकृच्छ्रविनाशनम्॥ १५ ॥
शर्करायवक्षारं समं वा भक्षयेत्।
शौभाञ्जनमूलक्वाथं वा पिबेत् अश्मरी पतति॥ १६ ॥
हरीतकीचित्रकम् आर्द्रकं च मस्तुना पिबेत्,
प्लीहनाशनम्॥ १७ ॥
जीरकं गुडेन भक्षयेत्। ज्वरो वातो विनश्यति॥ १८ ॥
यवक्षारं दधिना पिबेत्। आमवातनाशः॥ १९ ॥
कटुत्रयं विडङ्गसैन्धवं दत्त्वा मण्डं कोष्णं पिबेत्।
अग्निर् दीप्यति कृमयो विनश्यन्ति॥ २० ॥
हरीतकीं गुडेन भक्षयेत्। दुर्नामा विनश्यति॥ २१ ॥
हरीतकीं शुण्ठ्या भक्षयेत्। आमवातनाशः॥ २२ ॥
दूर्वां हरिद्रया पिष्ट्वा लेपात् कच्छनाशः॥ २३ ॥
अनेनैव दद्रूविस्फोटकुक्कुरदंष्ट्राप्यातादिकं नाशयेत्॥२४ ॥
कासमर्दकमूलं काञ्जिकेन पिष्ट्वा,
तथा गुडं कटुतैलेन पिबेत्। श्वासो विनश्यति॥ २५ ॥

कुटज पुष्प के वल्लक को पीसकर मरीच और गुडशुण्डी को मिलाकर गाय के तक्र के साथ पीने से ग्रहणी का नाश होता है।

अमला, पिप्पली, चित्रक, अद्रक, गुड, घी मधु को समान परिमाण में मिलाकर खाने से कास (खाँसी) नष्ट होता है। हरितकी के चूर्ण को मधु से खाने से भी वही फल है।

खदीर के साक के साथ यवय वागू के भक्षण से कुक्षिरोग का नाश होता है।

अद्रक और जीरा दही और मांड के साथ खाने से अश्मरी नष्ट होती है।

प्लीहा के नाश के लिए – हरीतकी, अद्रक मस्तु के साथ पिये।

जिरा को गुड के साथ खाने से ज्वर वात नष्ट होता है।

जौ के चूर्ण को दही के साथ पीने से आमवात नष्ट होता है।

तीन मरीचकों को (मिर्च) पहाड़ी नमक के साथ मिलाकर थोड़ा सा गरम माड पिये। पेट की अग्नि बढ़ती है, कीड़े नष्ट होते हैं।

हरीतकी को गूड के साथ पीने से दुर्नाम नष्ट होता है।

हरीतकी को शुण्डी के साथ खाने से आमवात नष्ट होता है।

दूब को हल्दी के साथ पिसकर खाने से कच्छ नाश होता है।

इसी प्रकार दाद, फोड़े, कुत्ते के काटने से हाने वाले घाव आदि भी नष्ट किए जाते हैं।

कास मर्दक मूल को काञ्जिक के साथ पीसकर गुड और तेल मिलाकर खाने से काश नष्ट होता है॥ १२-२५ ॥

अर्जुनत्वचं घृतादिना भक्षयेत्। हृदयव्यथानाशः॥ २६ ॥
बिल्वं दग्ध्वा गुडेन भक्षयेत्। रक्तातिसार नाशः॥ २७ ॥
मातुलुङ्गरसं गुडेन पिबेत्। शूलं नश्यति॥ २८ ॥
गडं शुण्ठ्या नस्यं दद्यात्। सर्वश्लेष्मनाशः॥ २९ ॥
केतकं मधुनाञ्जयेत्। सर्वाक्षिरोगनाशः॥ ३० ॥
काञ्जिकं तैलं सैन्धवं दूर्वामूलं च कांसे-
निघृष्याञ्जनाच् चक्षुःशूलनाशः॥ ३१ ॥
गुडं घृतेन भक्षयेत्।
वातपित्तश्लेष्मकुष्ठादयो विनश्यन्ति॥ ३२ ॥
त्रिफलाचूर्णं घृतमधुना भक्षयेत्। सर्वरोगनाशः॥ ३३ ॥
हरीतकीचूर्णं घृतमधुना विकाल आलिहेत्।
वातश्लेष्मविनाशनम्॥ ३४ ॥

अर्जुन त्वचा को घी के साथ खाने से हृदय पीड़ा नष्ट होती है। बेल को जलाकर गुड़ के साथ खाने से रक्त अतिसार नष्ट होता है। मातुलुङ्ग के रस को गुड़ से पीने पर पेट शूल नष्ट होता है। गुड़ को शुण्डी के साथ नाक में रखने से श्लेष्मा नष्ट होता है।

केतक को मधु के साथ आँख में लगाने से नेत्ररोग नष्ट होते हैं।

काञ्जिक, तैल, नून और दूर्वा को पीसकर कांसे के वर्तन में रखकर लगाने से आँख के रोग नष्ट होते हैं।

गुड़ और घी खाने से वात, पित्त, श्लेष्मा और कुष्ठ रोग नष्ट होते हैं।

त्रिफला को घी और मधु के साथ खाने से सभी राग नष्ट होते हैं।

हरीतकी चूर्ण को घी और मधु के साथ विकाल में चाटने से वात और श्लेष्मों का विनाश होता है॥ २६-३४ ॥

वासकपञ्चाङ्गं वचां ब्रह्मीं पिप्पलीं च शुष्कचूर्णीकृत्य सैन्धवेन मधुना च वटीं कुर्यात्। ततो भक्षयेत् विकाले। वातश्लेष्म विनश्यति। स्वरं च मधुरं भवति॥ ३५ ॥

ब्रह्मी वचाशुण्ठीपिप्पलीहरीतकीवासकं खदिरं च मधुना गुडिकां कृत्वा भक्षयेत्। तथैव फलम्॥ ३६ ॥

यवानीशुण्ठीहरीतकी सैन्धवान् समान् भक्षयेत्।

सर्वाजीर्णनाशः ॥ ३७ ॥

गुडूचीरसं मधुना पिबेत्। प्रमेहनाशो मासत्रयैकेन॥ ३८ ॥

दुग्धं पिप्पलीचूर्णं घृतमधुभिः पिबेत्। ज्वरहृद्रोगकासादयो नश्यन्ति॥ ३९ ॥

लज्जालुशरपुङ्खयोर् मूलं वासोदकेन पीष्ट्वा लेपयेत्। गुडूचीमूलं भक्षयेत्। नाडीव्रणनाशनम्॥ ४० ॥

वासक पञ्चाङ्ग, वचा, ब्राह्मी तथा पिप्पली का चूर्ण बनाकर उनकी छोटी छोटी गोलियाँ बनायें नमक और मधु को मिलाकर फिर विकाल में खाने से वातश्लेष्म नष्ट होता है। स्वर भी मधुर होता है।

ब्राह्मी, वचा, शुण्ठी, पिप्पली, हरीतकी, वासक, खदिर को चूर्ण बनाकर मधु के साथ खाने से फल पहले के तरह ही होते हैं।

यवानी, शुण्ठी, हरीतकी को समान करके नमक मिला दे और प्रतिदिन भक्षण से सभी अजीर्ण नष्ट होते हैं। गूडूची का रस मधु के साथ पीने से ४ महीनों में प्रमेय नाश हो जाता है।

दूध को पिप्पली चूर्ण के साथ घी और मधु के साथ पीने से ज्वर, हृदय पीड़ा और कास आदि नष्ट होते हैं। लज्जालु घास के पंखुड़ियों को पीसकर पानी मिला दे और लेपन करने से तथा गुडूची के मूल को खाने से नाडी के घाव ठीक होते हैं॥ ३५-४० ॥

शुण्ठीं यवक्षारेण भक्षयेत्। बुभुक्षा भवति॥ ४१ ॥

जयन्तीबीजं मरीचेन पिबेद् दिनत्रयम्। पापरोगनाशः॥ ४२ ॥

त्रिफला नलिका कृष्णमृत्तिका भृङ्गराजकः सहकाराम्लबीजं लोहचूर्णं काञ्जिकं। एभिर् पामनं कुर्यात्, ततो गुग्गुलेन केशं धूपयित्वा तेन मर्दयेत्। ततः सप्ताहं बद्ध्वा स्थापयेत्। केशरञ्जनम्॥ ४३ ॥

मयूरपित्तभृङ्गराजरसाभ्यां गव्यघृतं पक्त्वा नस्यं दद्यात्। सप्ताहात् केशरञ्जनम्॥ ४४ ॥

पुनर्नव रण्डयोः क्वाथं कुर्यात् षोडशगुणेन जले भागैकं स्थापयेत्। ततो गालयित्वा श्वेतगुण्डचूर्णं दद्यात्। ततस् तैलशरावम् एकं बन्धयेत्। अनेन केशाभ्यङ्गात् केशरञ्जनम्॥ ४५ ॥

भूमिविदारीत्रिकटुगन्धकं समं चूर्णीकृत्य, वर्तिकामध्ये कृत्वा, ज्वलदधोमुखवर्तिकाक्रमेण कटुतैलं गृह्य सततं बिन्दुद्वयस्य नस्येन वलिपलितं नश्यति॥ ४६ ॥

शुण्डी को जौ के साथ खाने से भूख लगती है। जयन्ती के बीज को मरीच के साथ तीन दिन पीने से पाप रोग नष्ट होता है।

त्रिफला, कृष्ण वर्ण की मिट्टी, भृङ्गराज, सहकार के बीज, काञ्जिक को मिलाकर पीस दे, फिर गुग्गुल के साथ मिलाकर बालों पर लगाने से और मर्दन पूर्वक एक सप्ताह तक बाँधकर रख देने से केश रञ्जित रंग से भर जाते हैं - काले होते हैं।

मयूर पित्त के साथ भृङ्गराज रस को मिला कर गाय के घी में पका दें फिर लगाने से एक सप्ताह में केशकाले हो जाते हैं।

पुनर्नवा एवं रण्डा का क्वाथ बनाकर १६ गुणा ज्यादा जल में रख दें। फिर उसमें श्वेत गुण्ड का चूर्ण मिला दें। एक सरोरा तेल उसमें डाल दे। इससे केश का मर्दन करने से काले हो जाते हैं।

भूमि-विदारी, त्रिकटुगन्ध को समान कर चूर्ण बना दे उसे वर्तिका में रख दे, जलते हुए वाती के से गिरते हुए तेल को लेकर जमा कर दें। प्रतिदिन दो दो बूँद लेकर लगाने से सफेद बाल काले हो जाते हैं॥ ४१-४६ ॥

एतेन मर्दितरसेन कुष्ठलेपाच् छान्तिर् भवति। सद्यो

इस प्रकार के रसों के लेप से कुष्ण के लेपन से शान्ति होती है।

नवनीतमर्दितगन्धकमाषकसहितरसतोलकाशालिंचीलोणिकापिण्डेन घटयन्त्रेणाभ्यन्तरे मूषिकापिहितेन वालुकासहितेन वह्निदानाद् रसबन्धः। भक्षणात् क्षयादिनाशः॥ ४७ ॥

गोवत्सस्य प्रथमविष्ठां गृहीत्वा गुटिकां कारयेत्। पिण्डतगरमूलं पिष्ट्वा वेष्टयेत्॥ एकां गुलिकां भक्षयित्वा विषं भक्षयेत्। न प्रभवति ॥ ४८ ॥

जम्बूबीजं बीजपूरबीजं शिरिषबीजं च चूर्णयित्वा अजक्षीरेण, पायसं रन्धयेत्, घृतेन भक्षयेत्। पक्षैकं यावद् बुभूक्षा न भवति॥ ४६ ॥

अमलकी कुष्ठम् उत्पलं मांसी बला, एषां लेपेन विरलाः केषाः घनाः स्युः॥ ५० ॥

कुक्कुरदन्तम् अन्तर्धूमेन दग्ध्वा दुग्धघृतान्वितं कृत्वा म्रक्षयेत्। दुर्जाता अपि केशा उत्तिष्ठन्ति॥ ५१ ॥

नारिकेलजले पुरुषेन्द्रियं कतिपयक्षणं स्थापयित्वा सुरसुन्नगुण्डकं दद्यात्। पुरुषव्याधिर् नश्यति॥ ५२ ॥

इस प्रकार के रसों के लेप से कुष्ण के लेपन से शान्ति होती है।

तत्काल निर्मित नवनीत के गन्ध से युक्त माष, इलाइची, हरिद्रा, घटाची आदि को मिलाकर घड़े के भीतर रख देने से तथा बालु से उसे चारों ओर से घेर दें। पूर्ण सुरक्षित होने पर बाहर से अग्नि से खूख तपा दे। यह रस बन्ध कहलाता है। खाने से क्षय रोग नष्ट होता है। गाय के बछड़े के प्रथम गोबर को लेकर गोली बना दे। पिण्ड नगर के मूल को पीसकर उसे वेष्टित

करे। एक गोली खाकर विष खाने से भी कुछ नहीं होगा।

जम्बीर का बीज, अमरुद का बीज शिरिष का बीज पीसकर बकरे के दूध से पायस बनाकर घी के साथ खाने से १५ दिन भूख नहीं लगती। अमला, कुष्ठ, उत्पल, मांसी, बला इनका लेप बनाकर लगाने से केश घने होते हैं। कुकुर दन्त पेड़ के त्वचा को जलाकर दूध और घी मिलाकर लगाने से मरे हुए बाल भी फिर उगते हैं।

नारीयल के जल में पुरुष जननेन्द्रिय को रखकर - डुबोकर सुसुन्न गुण्डक का लेप करने से सभी व्याधि नष्ट होते हैं॥ ४७-५२ ॥

इत्य् एकल्लवीराख्ये श्रीचण्डमहारोषणतन्त्रे व्याधिवृद्धत्वहानिपटलो ऽष्टादशमः॥

इस प्रकार एकलवीर नामक श्रीचण्डमहारोषण तन्त्र में व्याधि-बुद्धत्व हानि नामक अठारवाँ पटल पूर्ण हुआ।

पटलः १६

अथ भगवान् आह। श्वेतापरजितामूलं शुक्रेण वटिकां कृत्वा तिलकेन वशीभवति स्त्री॥ १ ॥

भगवान् कहते हैं। सफेद अपराजिता के मूल को शुक्र के साथ गोली बनाकर तिलक करने से स्त्री वश में होती है॥ १ ॥

ब्रह्मदण्डीवचामधुना लिङ्गम् उद्धृत्य स्त्रियं कामयेद्। वशम् आनयति॥ २ ॥

दण्डोत्पलामूलं कुष्ठं ताम्बूलेन दद्यात्, तथा ब्रह्मदण्डी विडङ्गं वचा कुष्ठं नागकेशरं ताम्बूलेन दद्यात्, तथा ब्रह्मदण्डी विडङ्गं वचा कुष्ठं नागकेशरं ताम्बूलेन दद्यात्। वशीभवति॥ ३ ॥

गर्दभशुक्रं कमलकेशरं पिष्ट्वा ध्वजं लिप्तवा कामयेत्। वशीभवति ॥ ४ ॥

अदंशनशिशुलोलां गृह्य गोरोचनां स्वयम्भूकुसुमेन भाव्य तिलकेन, वशीकरणम्। भृण्गराजमूलम् आत्मशुक्रेणाञ्जनात् तथा॥ ५ ॥

ब्रह्मदण्डी वचा को मधु के साथ लिङ्ग में लगाकर स्त्री की कामना करने से वह वशीभूत होती है।

दण्ड उत्पला के जड को ताम्बूल के साथ देने से तथा ब्रह्मदण्डी विडङ्ग को वचा के साथ नाग केशर मिलाकर ताम्बूल के साथ देने से वह वशीभूत होती है।

गधे के शुक्र को कमल और केशर के साथ पीसकर ध्वजा में लेपन करके कामना करने से भी वह आकृष्ट होती है।

छोटे बगो के पालने को लेकर गोरोचन और स्वयम्भू-फूल के साथ मिलाकर तिलक करने से वशीभूत होती है।

इसी प्रकार भृङ्गराज के जड को अपने शुक्र से मिलाने से भी वही कार्य होता है॥ २-५॥

श्वेतकरवीरलतां वृकभासरक्तेन म्रक्षयेत्। श्मशानधूमेन धूपयित्वा स्त्रियं हन्याद्। वशीभवति॥ ६ ॥ मयूरशिखा काकजिह्वा मृतस्य निर्माल्यंशुकचूर्णं यस्याः शिरसि दीयते, सा वशीभवति। विष्णुक्रान्तामूलेन लिङ्गं लिप्तवा रमणात् तथा॥ ७ ॥

पुष्यनक्षत्रेण धुस्तुरस्य फलं संग्रहेत्। आश्लेषनक्षत्रेण वल्कलं, हस्तेन पत्रं, चित्रया पुष्पं, मूलेन मूलं, समभागचूर्णं मधुना वटिकां कुर्यात्। कर्पटे बध्य शोषयेत्। ताम्बूलेन दद्यात्। शङ्खचूर्णेन वशीकरणम्॥ ८ ॥

सफेद करवीरलता को वृकभास रक्त से मिला दे। फिर श्मशान के धूवें में रखकर स्त्री को मारे। वह वशीभूत होती है।

मयूर का पिच्छ कौवे के जीभ से मिलाकर कफन के टुकड़े में बाँधकर जिसको दिया जाता है वह वश में होती है। उसी प्रकार विष्णु क्रान्ता के मूल से लिङ्ग को लेपन करके रमण करने से भी वशीभूत होती है।

पुष्य नक्षत्र में धतूर के फल संगृहीत करें। अश्लेषानक्षत्र में उसकी त्वचा, हस्ता नक्षत्र में पत्ते, चित्र नक्षत्र में पुष्प, मूल नक्षत्र में जड़ का संग्रह करें। फिर बराबर मिलाकर चूर्ण बना दें। मधु से उसके वटी बनाये। कपड़े में रखकर सुखा दे। ताम्बूल के साथ किसी को भी देने से वह वश में होता है। और उसे शंख चूर्ण के साथ भी दे सकते हैं॥ ६-८ ॥

उन्मत्तकुक्कुरदक्षिणयाङ्गुल्या मेकाक्षीरेण यस्या नाम लिख्यते, अमुकी आयात्व् इति, सागच्छति॥ ९ ॥ निर्धूमाग्नौ तापयेन् मयूरशिखां पञ्चमलेन खानादौ दद्यात्। वशो भवति॥ १० ॥

अपराजितामूलं पुष्ये उत्पाद्य कर्पटं म्रक्ष्य नरतैलेन नृकपाले कगालं पातयेत्। तैलाञ्जनात् स्त्रीपुरुषवशीकरोति॥ ११ ॥

दण्डोत्पलामूलं पञ्चमलेन दद्यात्। वशम् आनयति॥ १२ ॥

विडङ्गं तगरं कुष्ठं मदिरया दद्यात्। अनिष्ठां नाशयति॥ १३ ॥

मनःशिलानागकेशरचूर्णप्रियङ्गुगोरोचनाभिर् अक्षिम् अञ्जयेत्। वशीकरणम्॥ १४ ॥

कस्तूरीलज्जाधुस्तुरकसहदेवाभिः कृततिलकः त्रैलोक्यं वशम् आनयति॥ १५ ॥

उन्मत्त (पागल) कुत्ते के दक्षिण की ओर रहकर दाहिनी अङ्गुली से जिसका नाम लिखा जाता है, वह आये। वह आ जाती है।

धूवाँ रहित आग में मयूर शिखा को तपाकर उसका मञ्चमलों से मिलाकर देने से वह वश में होता है। अपराजिता के जड़ को पुष्य नक्षत्र में लेकर कर्जर डालकर नर तैल के साथ मनुष्य के कपाल में कगाल गिरा देने से तथा उसके लगाने से स्त्री और पुरुष सब वशीभूत होते हैं।

दण्ड उत्पला का मूल पाँच मलों के साथ देने से वश में होता है।

विडङ्ग, तगर और कुष्ठ मदिरा के साथ देने से अनिष्ट नष्ट होते हैं। मन शिला, नाग केशर चूर्ण और प्रियङ्गु को गोरोचन से मिलाकर आँख में लगाने से वशीकरण होता है।

कस्तुरी, लज्जा, धत्तुर को सहदेव के साथ मिलाकर तिलक करने से तीनों लोक वश में आ जाता है॥ ६-१५॥

ॐ चलचित्ते चिलि चिलि चुलु चुलु रेतो मुञ्च मुञ्च स्वाहा। स्वलिङ्गस्योपरि रक्तकरवीरकुसुमं संस्थाप्य सहस्रम् एकं जपेत्। नामविदर्भितेन यस्याः पुरतो मन्त्रं पठंस् ताम्रशु%यां विद्ध्वा भ्राम्यते सा वश्या भवति॥ १६॥

पूर्वसेवा दशसहस्राणि नामरहितं कृत्वा, नमः चण्डाली अमुकीं वशीकुरु स्वाहा। सेवायुतं। श्मशानभस्म कृष्णचतुर्दश्याम् अष्टोत्तरशताभिमन्त्रितं कृत्वा स्त्रीशिरसि दद्यात्। वशा भवति॥ १७ ॥

ॐ चलचित्ते चिलि चिलि चुलु चुलु रेतो मुञ्च मुँञ्च स्वाहा। अपने लिङ्ग के ऊपर रक्त करवीर के पुष्पों को रखकर यह मन्त्र एक हजार वार जपने से तथा उसका नाम लेकर जिसके सामने यह मन्त्र पढ़ा जाता है वह वशीभूत होती है।

वही मन्त्र पहले के तरह ही बिना नाम के ही दश हजार बार जपने

और फलानी चण्डाली को वश में करो यह जोड़ने से तथा श्मशान भस्म को कृष्ण चतुर्दशी में १०८ बार अभिमन्त्रित करके स्त्री के शिर में रख देने से वह वश में होती है॥ १६-१७ ॥

अजस्य लिङ्गम् आदाय कटयां श्मशानसूत्रकैः।
करटकस्याथवा पुच्छं बन्धयेच् छुक्रस्तम्भनम्॥ १८ ॥
सत्सुखैकमनाः कुर्वन् मैथुनं धैर्ययोगतः।
निश्चेष्टवत् सदा भूत्वा शुक्रस्तम्भनम् उत्तमम्॥ १६ ॥

बकरे का लिङ्ग लेकर अपने कटी में श्मशान के डोरों से कण्टक के पूँछ को बाँधने से शुक्र का स्तम्भन होता है। सुख के साथ एकाग्र और धैर्य के साथ मैथुन करते हुए निष्चेष्ट के तरह होकर शुक्र का स्तम्भन किया जा सकता है॥ १८-१६ ॥

मूलं सितकोकिलाख्यस्य धुस्तुरस्याथवोत्तरं।
श्वेतशरपुङ्खमूलं च बन्धयेच् छुक्रस्तम्भनम्॥ २० ॥
शणमूलं शतीमूलं यदि [वा] सुरसुन्नकं।
भक्षयेन् मैथुनात् पूर्वम्, शुक्रस्तम्भनम् उत्तमम्॥ २१ ॥
करञ्जं कोरयित्वा तु पारदेन प्रपूरयेत्।
बन्धनाच् च कटौ सूत्रैः शुक्रस्य धरन्त्तमा॥ २२ ॥

सफेद कोकिल के जड को, धतूर के फूल को, सफेद शरके पङ्ख को कमर में बाँधने से शुक्र का स्तम्भन होता है।

शण का जड, शती का जड तथा सुर के मूल को मैथुन से पूर्व भक्षण करने से शुक्र का स्तम्भन होता है।

करञ्ज को लेकर पारद के साथ उसे भर दे। कम्मर में सूत्रों से बाँधने से शुक्र का स्तम्भन हो जाता है॥ २०-२२ ॥

शूकरस्य तैलेन लाक्षारञ्जितश्वेतार्क भूल वर्त्या प्रदीपं ज्वालयेत्। शुक्रस्तम्भनम्॥ २३ ॥

कुसुम्भतैलं वा पचेत्, तेन पादतलं म्रक्षयेत्। शुक्रस्तम्भनम्॥२४॥

सितकाकजणघामूलशितपद्मकेशरमधुभिर् लेपाच् छुक्रस्तम्भनम् ॥ २५ ॥

विष्णुक्रान्तामूलं पद्मपत्रेण वेष्तयित्वा कटौ बन्धयेत्।
शुक्र स्तम्भनम्॥ २६ ॥
हरितालरसाञ्जनपारदपिप्पलीसैन्धवकुष्ठपारावतविष्ठां
च पिष्ट्वाङ्गोद्ध्र्ववर्तनाच् छुक्रस्तम्भनम् ॥ २७ ॥
ऊर्ध्वबलीवर्धशृङ्गं गृह्य निघृष्य लिङ्गं लेपयेत्।
ऊर्ध्वलिङ्गो भवति॥ २८ ॥

कपिकच्छुमूलं दर्पिष्ट च्छागमूत्रेण पिष्ट्वा, लिङ्गं लिप्य, सम्मर्द्य, उत्पाटयेत् वारत्रयम्। स्तम्भं भवति॥ तप्तोदकक्षालनात् शान्तिः॥ २९ ॥

कपर्दकाभ्यन्तरे पारदं पूरयित्वा मुखे स्थापयेत्।
शुक्रस्तम्भनम् ॥ ३० ॥

शूकर के तेल से लाक्षा से रञ्जित तेल से दीप जलाने पर शुक्र का स्तम्भन होता है।

कुसुम के तेल को पकाकर पाव के नीचे लगाने से शुक्र का स्तम्भन होता है।

सफेद केटक फूल के जड को सफेद पद्म केश और मधु से मिलाकर लेप करने से भी शुक्र का स्तम्भन होता है।

विष्णु क्रान्त फूल के जड को पद्म पत्रों से वेष्टित करके कटि में बाँधने से शुक्र का स्तम्भन होता है। हरिताल के रस को पारद और पिप्पली, नमक आदि से मिलाकर चूर्ण बनावें तथा अङ्गों के नीचे और ऊपर लगाने से शुक्र स्तम्भन होता है। बयल के खड़े सींघ को लेकर उसे घीस दे फिर लिङ्ग में लेपन कर दे। वह ऊर्ध्व लिङ्गी होता है।

कपिकच्छु के मूल को छाग के मूत्र के साथ पीसकर लिङ्ग में लेपकर, मर्दन कर तीन बार उसे उपर उठाए। स्तम्भन होता है। गरम जल से धोने से शान्त होता है।

खोपड़ी के अन्दर पारद रखकर मुखे स्थापित करने से शुक्र स्तम्भन होता है॥ २३-३० ॥

छागमूत्रेण इन्द्रवारुणीं सप्ताहं भावयेत्। तेनोद्वर्तनात् स्तब्धं भवति लिङ्गम्॥ ३१ ॥

ओषणीमूलं कामाचीमूलं धुस्तुरबीजं कर्पूरजलेन पिष्ट्वा लिङ्गं लेपयित्वा स्त्रियं कामयेत्। द्रवति। सैन्धवटङ्गणकर्पूरघोषकचूर्णं मधुना पिष्ट्वा लिङ्गलेपात् तथा॥ ३२ ॥

पारावतपुरीषं मधुना पिष्ट्वा लिङ्गं प्रलिप्य कामयेत्।
क्षरति॥ ३३ ॥
कामाचीमूलं ताम्बूलेन सुरतक्षणे स्त्रियं भक्षयेत्।
क्षरति सा॥ ३४ ॥

पक्वतिन्तिडीरसिकां सैन्धवेन मिश्रीकृत्य स्वतर्जन्यङ्गुलीं लिप्य तस्या भगे प्रक्षिप्य वज्रधातवीश्वरीनाडीं चालयेत् यावत् सा क्षरति ॥ ३५ ॥

छागमूत्र से इन्द्रवारुणी को सप्ताह पर्यन्त भावित कर उसे लेपने से लिङ्ग स्तब्ध होता है।

ओषणी का मूल, कामाची का मूल, धतुर का बीज कपूर के जल के साथ पीसकर लिङ्ग में लेपन करे स्त्री की कामना करें। द्रवित होता है। सैन्धव-टङ्गण-कपूर के चूर्ण को मधु के साथ पीसकर लेपन करने से भी वह फल होता है।

पारावत विष्टा को मधु के साथ पीसकर लिङ्ग में लेपन करके चाहने से वह द्रवीभूत होती है।

कामाची मूल को ताम्बूल के साथ सुरत के क्षण में स्त्री को भक्षित कराये। वह द्रवीभूत होती है। पक्व तिन्तिडी के रस को नमक के साथ मिलाकर अपने तर्जनी में लेपन कर उस स्त्री के भग में क्षिप्त कर वज्रधातु ईश्वरी नाडी का संचालन करें, वह क्षरित होती है॥ ३१-३५ ॥

कर्पूरटङ्गणपारदहस्तिपिप्पलीमधुभिर् लेपात्
क्षरति स्त्री॥ ३६ ॥
रामदूतीमूलं सपत्रं चर्वयित्वा लिङ्गं प्रक्षिप्य कामयेत्।
क्षरति॥ ३७ ॥
जयन्त्या मूलकं पिष्ट्वा तण्डुलोदकमिश्रितम्,
रतौ योनिप्रलेपेन, वन्ध्या नारी न संशयः॥ ३८ ॥

पिष्ट्वा पलाशबीजं तु लेपयेत्।
मधुसर्पिषा पानाच् च रक्तचिस्य वन्ध्या नारी न संशयः॥ ३९ ॥
शलभपतंगचूर्णं श्लथयोनौ दद्यात्। गाढा भवति॥ ४० ॥

कर्पूर, टङ्कण, पारद, हस्ति, पिप्पली को मधु के साथ लेपन करने से स्त्री द्रवित होती है।

रामदूती मूल को पत्तों के साथ चबाकर लिङ्ग में क्षिप्त करने से वह स्त्री द्रवीभूत होती है।

जयन्ती के मूल को पीसकर चावल और जल मिलाकर रति के समय योनि में लिप्त करे वह नारी बन्ध्या होती है इसमें सन्देह नहीं है।

पलाश के बीज को पीसकर योनि में लेपन करने से तथा मधु और घी खाने से वह नारी बन्ध्या होती है। कोई सन्देह नहीं है।

शलभ पक्षी के चूर्ण को शिथिल योनि में लगाने से वह मजबूत होती है॥ ३६-४० ॥

इत्य एकल्लवीराख्ये श्रीचण्डमहारोषणतन्त्रे शुक्रस्तम्भादिपटल उनविंशतितमः॥

इस प्रकार एकलवीर नामक श्रीचण्डमहारोषण तन्त्र में शुक्रस्तम्भआदि नामक १९वाँ पटल पूर्ण हुआ।

पटलः २०

अथ भगवती भगवन्तम् एतद् अवोचत्॥

भगवती ने भगवान् से यह कहा।

नाना विभेदनिगदितं मन्त्रयन्त्रादिकौशलम्।
अपरं श्रोतुम् इच्छामि तथा कुतूहलं विभो॥ १ ॥
वायुयोगमशेषं च तथा कालस्य लक्षणम्।
स्वरूपं देहयन्त्रस्य प्रसादं कुरु सम्प्रतम्॥ २ ॥

अनेक प्रकार के मन्त्र, यन्त्र आदि कौशल के विषय में आपने बताया और भी मुझे कुतुहल हो रहा है हे प्रभो! मुझे सुनने के लिए, वायु के योग को, काल के लक्षण को तथा देहयन्त्र के स्वरूप को भी मैं जानना चाहती हूँ। आप प्रसन्न हों और बतायें॥ १-२ ॥

अथ भगवान् आह॥

भगवान् कहते हैं।

साधु साधु कृतं देवि यत् त्वयाध्येषितो ऽत्र हि।
अथातः सम्प्रवक्ष्यामि सर्वविज्ञानसञ्चयम्॥ ३ ॥

हे देवि! आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया। अब मैं आपसे प्रेरित होकर सभी विज्ञानों के लक्षण बताता हूँ॥ ३ ॥

ॐ ज्वालाकरालवदने हस हस हलाहलवज्रे सुवज्रे स्फर स्फर स्फारय स्फारय सर्वमेघवातवृष्टिं स्तम्भय स्तम्भय स्फोटय स्फोटय यः यः यः सर्वपानीयम् शोषय शोषय हूं फट्। एतन् मन्त्रं जपन् आकशं क्रोधदृष्ट्यालोकयेत्। वातमेघादीन् नाशयति॥ ४ ॥

ॐ ज्वालाकरालवदने हस हस हलाहलवज्रे सुवज्रे स्फर स्फर स्फारय स्फारय सर्वमेघवातवृष्टिं स्तम्भय स्तम्भय स्फोटय स्फोटय यः यः यः सर्वपानीयम् शोषय शोषय हूं फट्। एतन् मन्त्रं जपन् आकशं क्रोधदृष्ट्यालोकयेत्। वातमेघादीन् नाशयति। इस मन्त्र को जपते हुए आकाश को क्रोध पूर्वक देखे। वात और मेघ आदि नाश होते हैं॥ ४ ॥

ॐ फेत्कार फें फें ह ह हा हा फेट्।

श्मशानक्रीडनमन्त्रः॥ ५ ॥

ॐ फेत्कार फें फें ह ह हा हा फेट्

(यह श्मशान क्रीडामन्त्र है)॥ ५॥

ॐ सर्वविद्याधिपतये परयन्त्रमन्त्रनाशने सर्वडाकिनीनां त्रासय त्रासय बन्ध बन्ध सुखं कीलय कीलय हूं फट्। इति नगरक्षेत्रप्रवेशन-मन्त्रः॥ ६ ॥

ॐ सर्वविद्याधिपतये परयन्त्रमन्त्रनाशने सर्वडाकिनीनां त्रासय त्रासय बन्ध बन्ध सुखं कीलय कीलय हूं फट्। यह नगर क्षेत्र प्रवेशन के लिए मन्त्र है॥ ६ ॥

ॐ हिलि हिलि फुः फुः। इत्य् अनेन मृत्तिकाम् अभिमन्त्र्य धूलिं दद्यात्। सर्पः पलायति॥ ७ ॥

ॐ हिलि हिलि फुः फुः। इस मन्त्र से मिट्टी को अभिमन्त्रित करके धूली डाल दे। सर्प भागता है॥ ७ ॥

ॐ मम्मा मम्मा। इत्य् अनेन व्याघ्रः पलायते॥ ८ ॥

ॐ मम्मा मम्मा। इस मन्त्र से बाघ भागता है॥ ८ ॥

ॐ वेदु आ वेदु आ। इत्य् अनेन हस्ती पलायते॥ ९ ॥

ॐ वेदु वेदु आ। इस से हाथी भाग जाता है॥ ९ ॥

ॐ तेर्लि आ तेर्लि आ। इत्य् अनेन गण्डः पलायते॥ १० ॥

ॐ तेर्लि आ तेर्लि आ। इससे गडा भाग जाता है॥ १० ॥

ॐ ह्रीं बटुकनाथ चण्डमहारोषण हूं फट्।

इति वामतर्जन्या कोटयन् श्वानः पलायते॥ ११ ॥

ॐ ह्रीं बटुकनाथ चण्डमहारोषण हूँ फट्। इस मन्त्र पूर्वक तर्जनी से डराने से कुत्ता भाग जाता है॥ ११ ॥

ॐ यमान्तक ह्रीः स्त्रीः हूं हूं हूं फट् फट् त्रासय त्रासय चण्ड प्रचण्ड हूं फट्। इत्य् अनेन महीषः पलायते॥ १२ ॥

ॐ यमान्तक ह्रीः स्त्रीः हूं हूं हूं फट् फट् त्रासय त्रासय चण्ड प्रचण्ड हूं फट्। इस मन्त्र से भैंसा भागता है॥ १२ ॥

ॐ यममर्दने मर्दय मर्दय चण्डमहारोषण हूं फट्। इत्य् अनेन पापरोगः पलायते॥ १३ ॥

ॐ यममर्दने मर्दय मर्दय चण्डमहारोषण हूं फट्। इस मन्त्र से पापरोग समाप्त होता है॥ १३ ॥

ॐ क्रोशणे संक्रोशणे भेदनाय हूं फट्। [इत्य] अभिमन्त्रयोदकं दद्यात्। शूलं पलायते॥ १४ ॥

ॐ त्रासने मोहनाय हूं फट्। इत्य् अनेन शिखाबन्धनाद् रक्षा॥१५॥

ॐ त्रासने मोहनाय हूं फट्। इस मन्त्र से शिखा बन्धन से रक्षा होती है॥ १५ ॥

ॐ अचले संचले अमुकस्य मुखं कीलय हूं फट्। मदनेन चतुरङ्गुलपुत्तलीं कृत्वा भुर्जे हरितालेन लिखित्वा तस्या मुखे प्रक्षिप्य कीलयेत्। चतुःपथे निखनेत्। प्रतिवादिमुखं कीलयति॥ १६ ॥

ॐ अचले संचले अमुकस्य मुखं कीलय हूं फट्। इस मन्त्र को भोजपत्र में लिखकर हरिताल से उसके मुख पर प्रक्षिप्त करने से वह बोल नहीं सकता। चौराहे पर गाड देने से प्रतिवादी का मुख बन्द हो जाता है॥ १६ ॥

ॐ सर्वमारभञ्जने अमुकस्य पादौ कीलय हूं फट्। पूर्ववद् हृदये प्रक्षिप्य पादौ कीलयेत्। गतिम् आगतिं स्तम्भयति॥ १७ ॥

ॐ सर्वमारभञ्जने अमुकस्य पादौ कीलय हूं फट्। इस मन्त्र से भी गति और आगति रुक जाती है॥ १७ ॥

ॐ विकृतानन परबलभञ्जने भञ्जय भञ्जय स्तम्भय वज्रपाशेन अमुकं ससैन्यं बन्ध बन्ध हूं फट् खः गः ह हा हि ही फें फें। ॐ

चण्डमहारोषण हूं फट्। पूर्ववत् प्रक्षिप्य सेनाधिपतेर् अष्टाङ्गानि कीलयेत्। चुल्ह्यां मध्ये अधोमुखीकृत्य निखनेत्। परसैन्यागमनं स्तम्भयति॥ १८ ॥

ॐ विकृतानन परबलभञ्जने भञ्जय भञ्जय स्तम्भय वज्रपाशेन अमुकं ससैन्यं बन्ध बन्ध हूं फट् खः गः ह हा हि ही फें फें। ॐ चण्डमहारोषण हूं फट्। इस मन्त्र को चुले के नीचे गाडकर रख देने से दूसरे के सैनिक वहीं रुक जाते हैं॥ १८ ॥

ॐ दह दह पच पच मथ मथ ज्वर ज्वर ज्वालय ज्वालय शोषय शोषय गृह्ण गृह्ण ज्वल ज्वल। ॐ चण्डमहारोषण हूं फट् स्वाहा। श्मशानवस्त्रे विषराजिकयाष्टाङ्गुलप्रमाणं देवदत्तम् अभिलिख्य मालामन्त्रेण वेष्टयित्वा मदनपुत्तलिकाहृदि प्रक्षिप्य स्नुही काष्ठमध्ये प्रक्षिपेत्। ततः ॐ चण्डमहारोषण अमुकं ज्वरेण गृह्णापय हूं फट्। इति जपन् श्मशानाग्नौ तापयेत्। खदिरबदराग्नौ वा, शत्रुं ज्वालयति॥ १९ ॥

ॐ दह दह पच पच मथ मथ ज्वर ज्वर ज्वालय ज्वालय शोषय शोषय गृह्ण गृह्ण ज्वल ज्वल। ॐ चण्डमहारोषण हूं फट् स्वाहा। श्मशानवस्त्रे विषराजिकयाष्टाङ्गुलप्रमाणं देवदत्तम् अभिलिख्य मालामन्त्रेण वेष्टयित्वा मदनपुत्तलिकाहृदि प्रक्षिप्य स्नुही काष्ठमध्ये प्रक्षिपेत्। ततः ॐ चण्डमहारोषण अमुकं ज्वरेण गृह्णापय हूं फट्। इस मन्त्र को जपने से शत्रु जल जाता है॥ १९ ॥

ॐ जय जय पराजय निर्जितयन्त्रे ही ही हा हा स्फोटय स्फोटय उच्छादय उच्छादय शीघ्रं कर्म कुरु कुरु। ॐ चण्डमहारोषण हूं फट्। श्मशानकर्पटे लिखित्वा नीलसूत्रेण वेष्ट्य बाहौ कण्ठे शिरसि कटौ वा धारयेत्। परयन्त्रं न भवति॥ २० ॥

ॐ जय जय पराजय निर्जितयन्त्रे ही ही हा हा स्फोटय स्फोटय उच्छादय उच्छादय शीघ्रं कर्म कुरु कुरु। ॐ चण्डमहारोषण हूं फट्। इसे श्मशान कर्पट में लिखकर नीलसूत्र से वेष्टन करके बाहु में, कण्ठ में, शिर में और कटि में धारण करें। परयन्त्र काम नहीं करता॥ २० ॥

ॐ चण्डमहारोषण ग्रस ग्रस ख ख खाहि खाहि शोषय शोषय मर मर मारय मारय अमुकं हूं फट्। श्मशानकर्पटे लिखित्वा पूर्ववत्

पुत्तलिकायां प्रक्षिप्याङ्गुलप्रमाणेनास्थिकीलकेन लोहकीलकेन वा कीलयित्वा श्मशाने अधोमुखीकृत्य निखनेत्। सप्ताहेन मारयति॥ २१ ॥

ॐ चण्डमहारोषण ग्रस ग्रस ख ख खाहि खाहि शोषय शोषय मर मर मारय मारय अमुकं हूं फट्। श्मशान के कपड़े में लिखकर पुत्तलिका में प्रक्षेपक्ष करके अङ्गुल प्रमाण से अस्थि के कील से अथवा लोहा के कील से कीलन करके श्मशान में अधोमुख करके गाड दे। एक सप्ताह में मर जाता है॥ २१ ॥

ॐ चण्डमहारोषण अमुकम् उच्चाटय हूं फट्। निम्बस्थकाकवासं गृहीत्वा श्मशानाग्निना दहयेत्। तद्भस्माष्टशताभिमन्त्रितं गृहपटले च प्रक्षिपेत्। उष्ट्रारुढं चारेन पाशेन बद्ध्वा दक्षिणं दिशं नीयमानं ध्यायात्। उच्चाटयति॥ २२ ॥

ॐ चण्डमहारोषण अमुकम् उच्चाटय हूं फट्। इस मन्त्र से उच्चाटन होता है॥ २२ ॥

ॐ द्वेषणे द्वेषवज्रे अमुकं अमुकेन विद्वेषय। ॐ चण्डमहारोषण हूं फट्। युध्यमानकुक्कुरयोर् धूलिं गृहीत्वा साध्यप्रतिकृतिद्वयं हन्यात्। अन्योन्यं विद्वेषयति॥ २३ ॥

ॐ द्वेषणे द्वेषवज्रे अमुकं अमुकेन विद्वेषय। ॐ चण्डमहारोषण हूं फट्। इस मन्त्र से एक दूसरे में झगड़े होते हैं – आपस में॥ २३ ॥

ॐ चण्डमहारोषण ह्रीं ह्रीं ह्रों घोररूपे चट प्रचट प्रचट हन हन घाटय घाटय हह हह प्रस्फुर प्रस्फुर प्रस्फारय प्रस्फारय कीलय कीलय जम्भय जम्भय स्तम्भय स्तम्भय अमुकं हूं फट्। भूर्जे कूर्मं समालिख्य तालकेन षडङ्गुलं चतुष्पादेषु हईकारं प्लीकारं मुखमध्यतः। गर्ते विष्ठां ततो लिख्य साधकं तु पृष्ठतः परम्। मालामन्त्रेण संवेष्ट्य पूजास्तुत्या समारभेत्। इष्टकोपरि संन्यस्य कूर्मचटुना च्छादयेत्। रक्तसूत्रेण संवेष्ट्य पाद प्राञ्चत निक्षिपेत्। ताडयेद् वामपादेनामुकं में वशम् आनय सप्तवारान्। शत्रुं सुखं स्तम्भयति॥ २४ ॥

ॐ चण्डमहारोषण ह्रीं ह्रीं ह्रों घोररूपे चट प्रचट प्रचट हन हन घाटय घाटय हह हह प्रस्फुर प्रस्फुर प्रस्फारय प्रस्फारय कीलय कीलय जम्भय

जम्भय स्तम्भय स्तम्भय अमुकं हूं फट्। इस मन्त्र से शत्रु का सुख नष्ट होता है॥ २४ ॥

ॐ चिलि मिलि ललिते हूं फट्। चक्षुःसंकोचनं नश्यति॥ २५ ॥

ॐ चिलि मिलि ललिते हूं फट्। इस मन्त्र से शत्रुओं के आँख बन्द नहीं होते॥ २५ ॥

ॐ च्छ्रीं च्छ्रीं च्छ्रीं शोषय शोष्य धारं बन्ध बन्ध। ॐ चण्डमहारोषण हूं फट्। गवास्थिकीलं सप्ताङ्गुलप्रमाणम् अष्टोत्तरशताभिमन्त्रितं गोष्ठे निखनेत्। क्षीरं न स्रवते॥ २६ ॥

ॐ च्छ्रीं च्छ्रीं च्छ्रीं शोषय शोष्य धारं बन्ध बन्ध। ॐ चण्डमहारोषण हूं फट्। इस मन्त्र से शत्रु के गायों का दूध नहीं निकलता है॥ २६ ॥

ॐ वज्रिणि वज्रं पातय सुरपतिर् आज्ञापयति। ज्वालय ज्वालय ॐ चण्डमहारोषण हूं फट्। वाल्मीकमृण्मयं वज्रं अष्टोत्तरशताभिमन्त्रितं पण्यागारे गोपयेत्। पण्यं नश्यति॥ २७ ॥

ॐ वज्रिणि वज्रं पातय सुरपतिर् आज्ञापयति। ज्वालय ज्वालय ॐ चण्डमहारोषण हूं फट्। इस मन्त्र से शुत्रु का व्यापार नष्ट हो जाता है॥ २७ ॥

ॐ ह्रीं क्लीं त्रं यूं यममथने आकड्ढ आकड्ढ क्षोभय क्षोभय सर्वकामप्रसाधने हूं हूं फट् फट् स्वाहा। भुर्जपत्रे लिखेद् देवं द्विभुजं कुङ्कुमसंनिभं पाशाङ्कुशहस्तं कामोत्कटभीषणम्। गजमदमद्य लक्तरक्तरजस्वलाकुङ्कुमैर् विदर्भयेत् मन्त्राक्षराणि। ॐ शिरसि ह्रीं हृदि क्लीं नाभौ त्रं मेढ्रे। ततो मालामन्त्रेणावेष्ट्य रक्तसूत्रेण संवृत्य स्त्रीपुरुषकपालसम्पुटे प्रक्षिप्य घृतमधुपूरिते मदनेन च वेष्टयित्वा रक्तसूत्रेण च शिरःस्थाने निखनेत्। वामपादेनाक्रम्य जपेत्। पञ्चविंशतिसहस्रेण पुरक्षोभा भवति॥ २८ ॥

ॐ ह्रीं क्लीं त्रं यूं यममथने आकड्ढ आकड्ढ क्षोभय क्षोभय सर्वकामप्रसाधने हूं हूं फट् फट् स्वाहा। इस मन्त्र से शत्रु के नगर में तूफान खड़ा हो जाता है॥ २८॥

ॐ आकर्ष आकर्ष मोहय मोहय अमुकीं मे वशीकुरु स्वाहा। उदरकीटं सुचूर्णं कृत्वा शुक्रानामिकारक्ताभ्यां वटीं कृत्वाभिमन्त्र्य खाने

पाने दद्यात्। वशीकरोति॥ २६ ॥

ॐ आकर्ष आकर्ष मोहय मोहय अमुकीं मे वशीकुरु स्वाहा। इस मन्त्र से वशीकरण होता है॥ २६ ॥

उद्भ्रान्तपत्रौ भ्रमरस्य पक्षौ
द्वौ राजदन्तौ मृतकस्य माल्यम्।
अनेन चूर्णेनाव चूर्णिताङ्गी
पदे पदे धावति मूर्छिताङ्गी॥ ३० ॥

उड़ते हुए भ्रमर के दो पक्षो, दो राजा के दाँत, मृत की माला इस सबके चूर्ण से जिसको अभिमन्त्रित किया जाता है वह मूर्च्छित होकर चरणों पर आकर गिर जाती है॥ ३० ॥

ॐ श्वेतगृधृणि खाहि विषं च रुषं च खः खः ह ह सः सः। ॐ चण्डमहासेनाज्ञापयति स्वाहा। अथवा। ॐ संकारिणि ध्रं हां हूं हं हः। सर्वविषं नाशयति॥ ३१ ॥

ॐ श्वेतगृधृणि खाहि विषं च रुषं च खः खः ह ह सः सः। ॐ चण्डमहासेनाज्ञापयति स्वाहा। अथवा। ॐ संकारिणि ध्रं हां हूं हं हः। इस मन्त्र से समग्र विष नष्ट हो जाता है॥ ३१ ॥

ॐ नागारि वामनहरः फट्। अभिमन्त्रितमृदा द्वारे चीरिकया वा सर्पाप्रवेशः॥ ३२ ॥

ॐ नागारि वामनहरः फट्। इस मन्त्र से सर्पों का घर में प्रवेश नहीं होता है॥ ३२ ॥

ॐ आणे काणे अमुकिं वशीकुरु स्वाहा। सुगन्धिश्वेतपुष्पदानाद् वशीकरणम्॥ ३३ ॥

ॐ आणे काणे अमुकिं वशीकुरु स्वाहा। इस मन्त्र से वशीकरण होता है॥ ३३ ॥

ॐ नमो वीतरागाय मैत्रेय सिंहलोचनि स्वाहा। उदकेनाभिमन्त्रितेन चक्षुःक्षालनात् तिमिरं हन्ति॥ ३४ ॥

ॐ नमो वीतरागाय मैत्रेय सिंहलोचनि स्वाहा। इस मन्त्र के प्रयोग से अन्धकार हट जाता है। आँख अच्छे होते हैं॥ ३४ ॥

ॐ सफर खः। चूर्णं खाद। नानुप्रभवति॥ ३५ ॥

ॐ सफर खः चूर्णं खाद। इस मन्त्र से कोई दबा नहीं सकता॥ ३५ ॥

ॐ आदित्यस्य रथवेगेन वासुदेवबलेन च गरुडपक्षपातेन भूम्यां गच्छतु विषं स्वाहा। सर्पवृश्चिककर्कटादिविषं नाशयति॥ ३६ ॥

ॐ आदित्यस्य रथवेगेन वासुदेवबलेन च गरुडपक्षपातेन भूम्यां गच्छतु विषं स्वाहा। इस मन्त्र से सर्प, वृश्चिक, कर्कट आदि का विष नष्ट होता है॥ ३६ ॥

ॐ चामुण्डे ऽजिते ऽपराजिते रक्ष रक्ष स्वाहा। सप्ताभिमन्त्रितं नेष्टुकं चतुर्दिशि क्षिपेत्। एकं स्वस्थाने स्थापयेत्। ॐ जम्भनी स्तम्भनी मोहनी सर्वदुष्टप्रशमनी स्वाहा। चौरी न भवति॥ ३७ ॥

ॐ चामुण्डे ऽजिते ऽपराजिते रक्ष रक्ष स्वाहा। ॐ जम्भनी स्तम्भनी मोहनी सर्वदुष्टप्रशमनी स्वाहा। इस मन्त्र के प्रयोग से चोरी नहीं होती॥ ३७ ॥

ॐ नमश् चण्डमहाक्रोधाय हुलु हुलु चुलु चुलु तिष्ठ तिष्ठ बन्ध बन्ध मोह मोह हन हन मृते हूं फट्। पुष्पादिकं परिजप्य दानाद् वशम् आनयति॥ ३८ ॥

ॐ नमश् चण्डमहाक्रोधाय हुलु हुलु चुलु चुलु तिष्ठ तिष्ठ बन्ध बन्ध मोह मोह हन हन मृते हूं फट्। इस मन्त्र के प्रभाव से शत्रु वश में होता है॥ ३८ ॥

ॐ नमो रत्नत्रयाय ॐ टः सुविस्मरे स्वाहा। केतकीपत्रचीरिकया सर्वज्वराणि नाशयति॥ ३९ ॥

ॐ नमो रत्नत्रयाय ॐ टः सुविस्मरे स्वाहा। इस मन्त्र से सभी ज्वर नष्ट होते हैं॥ ३९ ॥

इत्य् एकल्लवीराख्ये श्रीचण्डमहारोषणतन्त्रे नानाभिभेदनिगति यन्त्रमन्त्रपटलो विंशतितमः॥

इस प्रकार एकलवीर नामक श्रीचण्डमहारोषण तन्त्र में नानाभि-भेद निगति - यन्त्र - मन्त्र नामक २०वाँ पटल समाप्त हुआ।

पटलः २१

अथ भगवान् आह। ॐ चण्डमहारोषण सर्वमायादर्शक सर्वमायां निदर्शय निर्विघ्ने हूं फट्। अनेन चण्डमहारोषणं ध्यात्वा सर्वं कुर्यात् ॥ १ ॥

भगवान् कहते हैं। ॐ चण्डमहारोषण सर्वमायादर्शक सर्वमायां निदर्शय निर्विघ्ने हूं फट्। इस मन्त्र से चण्डमहारोषण का ध्यान करके सब कुछ सिद्ध करें॥ १ ॥

उडुम्बरक्षीरेण कर्पटं म्रक्षयित्वा नीरन्ध्रं, सतैलसर्जरसं पिष्ट्वा, तस्मिन् प्रक्षिप्य, वर्तिं कारयेत्। उदकेन दीपज्वालनाज् ज्वलति स्थिरम्॥ २ ॥

इस प्रकार करने से दीप स्थिर होता है॥ २ ॥

रात्रौ वरटप्रस्थरखण्डद्वयं निघृष्य हूंकारेण-
विद्युच्छटां दर्शयति॥ ३ ॥

इस प्रकार रात को बिजुली की छटा दिखती है॥ ३ ॥

मृतजलुकचूर्णसहितलाक्षारञ्जितवर्तिंज्वालनात्-
स्त्रियस् तद् दृष्ट्वा नग्ना भवन्ति॥ ४ ॥

इस विधि से स्त्रियाँ इसको देखकर नग्न हो जाती हैं॥ ४ ॥

घृतेन कर्णचक्षुर्म्रक्षणाद् आत्मरक्षा॥ ५ ॥

इस प्रकार आत्म रक्षा होती है॥ ५ ॥

हलाहलसर्पस्य लाङ्गुलं छेदयेत्। नग्नो मुक्तशिखः यावल् लुटति तावन् नर्तयेत्।

तच्चूर्णमाषकचतुष्टयं धूस्तूरपञ्चाङ्गं प्रत्येकं माषकैकम् एभिः सहितलाक्षारञ्जितवस्त्रवर्त्यो दीपज्वालनात् सर्वे नृत्यन्ति तं दृष्ट्वा। पूर्ववद् आत्मरक्षा॥ ६ ॥

इस मन्त्र से आत्मरक्षा होती है॥ ६ ॥

शाखोटकमूलं बहेडीमूलम् एकीकृत्य गृहे स्थापयेत्।
कलहं भवेत्॥ ७ ॥

इस मन्त्र के प्रयोग से शत्रु के घर में कलह होता है॥ ७ ॥

धूस्तूरपुष्पमध्यस्थगुण्डकं सुगन्धिपुष्पमध्ये प्रक्षिप्याघ्रातमात्रेण शिरः शूलं भवति। काञ्जिकनस्येन मोक्षः॥ ८ ॥

इस मन्त्र के प्रयोग से शत्रु के शिर में पीडा होती है॥ ८ ॥

कुक्कुरीगर्भशय्या तथा धूपितं वेष्टितं मयूरपिच्छं सव्येन भ्रामितेन चित्रं हरति। अवसव्येन मोक्षः॥ ९ ॥

इस मन्त्र से चित्त का हरण होता है॥ ९ ॥

काकहृदयरुधिरेणाम्रपत्रे तत्पक्षलेखन्या लिखित्वा मन्त्रं यस्य विष्ठायां प्रक्षिपेत्, स काकेन खाद्यते। ॐ काककुहनी क्रुद्धनी देवदत्तं काकेन भक्षापय स्वाहा॥ १० ॥

इस मन्त्र के प्रयोग से शत्रुओं को कौवा खा जाते हैं॥ १० ॥

भगाकारं गर्तं कृत्वा स्त्रीविष्ठां वृश्चिकपात्रिकासुतां प्रक्षिप्य झोपयेत्। तस्याः मार्गं व्यथते॥ ११ ॥

इस मन्त्र के प्रयोग से उस स्त्री का मार्ग दु:ख से भर जाता है॥ ११ ॥

स्नुहीक्षीर भावितितिलतैलम्रक्षणात् शिरोरुहाः श्वेता भवन्ति। मुण्डिते मोक्षः॥ १२ ॥

इसके प्रयोग से शत्रु के बाल सफेद हो जाते हैं॥ १२ ॥

विरालीगर्भशय्या नारीगर्भशय्या द्वाभ्यां धूपाद् भित्तौ चित्रं न दृश्यते। माक्षिकधूपेन मोक्षः॥ १३ ॥

इस मन्त्र के प्रयोग से भित्ति का चित्र गायब हो जाता है॥ १३ ॥

उष्ट्रकपोलश्वेदफेनमूत्रे हरितालं बहुधा भावयित्वा हस्तं म्रक्ष्या-कर्षयेत्। चित्रं न दृश्यते। हस्तक्षालनान् मोक्षः॥ १४ ॥

इस प्रयोग से भी चित्र खो जाता है॥ १४ ॥

स्त्रीगर्भशय्यया धूपाच् चित्रं प्ररोदति।
गुग्गुलधूपेन मोक्षः॥ १५ ॥

इस प्रयोग से चित्र रोता है॥ १५ ॥

भेकतैलेन चक्षुरञ्जनाद् गृहवंशाः सर्पाः दृश्यन्ते॥ १६ ॥

इस प्रयोग से घर के वॉस साप में परिणत होते हैं॥ १६ ॥

दीपनिर्वाणाग्रौ गन्धकचूर्णदानात् पुनर् ज्वलति॥ १७ ॥

इस प्रयोग से दीप फिर जलता है॥ १७ ॥

मुण्डिरीसेवालजलौकभेकवसाभिः पादौ मृअक्षयित्वा कदली-पत्रेण वेष्ट्य ज्वलदङ्गारे भ्रमति न दह्यते॥ १८ ॥

इस प्रयोग से साधक जलते हुए अंगारों में बिना किसी दहन के चल सकता है॥ १८ ॥

स्नुहीमूलं गुडेन भक्षयेत्। निद्रा भवति॥ १९ ॥

इस प्रयोग से नींद आती है॥ १९ ॥

कामाचीमूलं शिखायां बन्धयेत्। निद्रा भवति॥ २० ॥

इसके प्रयोग से भी नींद आती है॥ २० ॥

नागदमनमूलं द्रोणपुष्पकमूलं हरिद्रातण्डुलं च पिष्ट्वोद्वर्तनाद उदकपरीक्षायां जयः॥ २१ ॥

इस प्रयोग से जल की परीक्षा में (तैरने में) सफलता मिलती है॥ २१ ॥

शाल्मलीमूले हिङ्गुलिकाखननात् पुष्पपातनम्॥ २२ ॥

इसके प्रयोग से फूलों की वर्षा होती है॥ २२ ॥

काङ्गुष्ठं मदिरया दद्यात् ताम्बुलेन वा।
विरेचनं भवति॥ २३ ॥

इसके प्रयोग से विरेचन होता है॥ २३ ॥

स्नुहीक्षीरम् अर्कबीजं घुणचूर्णं गुडेन भक्षयेत्।
रक्तं पतति॥ २४ ॥

इसके प्रयोग से रक्तपात होता है॥ २४ ॥

छुच्छुन्दरीचूर्णेन घोटकस्य नासां म्रक्षयेत्।
आहारं न करोति।
चन्दनेन प्रक्षालननस्याभ्यां मोक्षः॥ २५ ॥

इसके प्रयोग से शत्रु खाना छोड़ देता है॥ २५ ॥

केतकीमूलं शिरसि बन्धयेत्। खर्जुरमूलं हस्ते, तालमूलं मुखे। पुष्यनक्षत्रेणोत्पाटयेद् उत्तरदिशिस्थं। नग्नो मुक्तशिखो भूत्वा त्रयाणां च किंचित् पिष्ट्वा पिबेत्। शस्त्राघातं न भवति॥ २६ ॥

इसके प्रयोग से शस्त्रों से आघात नहीं होता॥ २६ ॥

श्योनाकबीजपूर्णपादुकाद्वयं हरिणचर्मणा कुर्यात्।
जले न मगाति॥ २७ ॥

इस प्रयोग से जल में नहीं डूबता है॥ २७ ॥

ओषणीं चर्वयित्वा जिह्वातले स्थापयेत्।
तप्तफालचाटनान् न दहति॥ २८ ॥

इस प्रयोग से जलते हुए लोहे को चाटने से भी जलन नहीं होता॥ २८ ॥

सूतकक्षारयुतहस्तिशुण्डीपानाद् गर्भपतनम्॥ २९ ॥

इस प्रयोग गर्भपात होता है॥ २९ ॥

श्वेतशपुण्खमूलं पुष्ये उद्धृत्य गव्यघृतेन भाव्य शिरसादौ बन्धयेत्। काण्डपतनम् चौरभयं वारयति॥ ३० ॥

इससे चोर से भय नहीं होता॥ ३० ॥

गृध्रवसा उलूकवसाभ्यां चर्मपादुकाम् आरुह्य,
अतिदूरे गमनागमने भवतः॥ ३१ ॥

इस प्रयोग से अतिदूर गमनागमन होता है॥ ३१ ॥

सर्षपफलम् अशस्त्रहतं सुदिवसे संध्यायाम् अधिवास्य नग्नो मुक्तशिखो भूत्वा वामपाणिना गृह्णीयाद् भूमौ न स्थापयेत्। रक्षा च भगवतो

मालामन्त्रेण कार्या॥ ३२ ॥

इस प्रयोग से रक्षा होती है॥ ३२ ॥

यस्य यस्य रक्तेन भावयेद् बहुशस् तद्रक्तसिञ्चनं तन्मांसेनोत्थानकं तदस्थिसारेण तैलकं तद्भस्मना वर्धितम् उप्तं तत्कपालके तद्वसासृङ्मांसादिरक्तेन सेचनं तद्धूपनेयनादीन् यत्नेन कृत्वा पुनः पुनः रक्षा बलिश् च कार्यः॥ ३३ ॥

इस प्रयोग से भी रक्षा होती है॥ ३३ ॥

परिणतफलं मुखे क्षिप्त्वा तदात्मकं-
भावयेत् तादृशो भवति॥ ३४ ॥

इस प्रयोग से रक्षा होती है॥ ३४ ॥

त्रिलोहवेष्टितेनान्तर्धानम्। तत्रेदं त्रिलोहं सार्धसप्तत्रयो माषाः सार्धद्वयचतुष्टयपञ्चगुञ्जास् त्रयो माषा रविचन्द्रहुताशनैः। ताम्रमा ३ ती २, रूप्यमा ४(?) ती २, सुवर्णमा ३ ती ५(?) ॥३५ ॥

इस प्रयोग से साधक की रक्षा होती है॥ ३५ ॥

नृकपाले गोरोचनारक्ताभ्यां साध्याकृतिम् आलिख्य तत्रैव तन्नाम मन्त्रविदर्भितं गन्धोदकलिप्तं द्वितीयकपालेन सम्पुटीकृत्य मृतकसूत्रेणावेष्ट्य सिक्थकेन ग्रन्थ्य जपेत्। चित्याङ्गारे तापयेत् रात्रौ यावत् सिक्थको विनीयते। सुरकन्याम् अप्य् आनयति। ॐ आकट आकट मोहय मोहय अमुकीम् आकर्षय जः स्वाहा॥ ३६ ॥

इस मन्त्र से आकर्षण और मोहन होता है॥ ३६ ॥

कपित्थफलं चूर्णीकृत्य माहिष्यदध्ना भावयेत् सप्तवारान्। नूतनभाण्डस्थे तक्रे तं गुण्डकं किंचित् प्रक्षिपेता्। क्षणमात्रेण दधि भवति॥ ३७ ॥

इस प्रयोग से तक्र दही में परिणत होता है॥ ३७ ॥

कपित्थफलं पिष्ट्वा नूतनभाण्डं लेपयेत्। तत्र दुग्धं यावयेत्। मन्थुरहितं दधि भवति॥ ३८ ॥

इस प्रयोग से कपित्थ दही में परिणत होता है॥ ३८ ॥

अपक्वघटे दुग्धम् आवर्तितं यावयेत्। जाते दधौ धैर्यशो घटं भञ्जयेत्। दधि घटो भवति॥ ३९ ॥

इस प्रयोग से भी घड़ा दही से भर जाता है॥ ३९ ॥

अर्कक्षीरेण नवघटं विभाव्य बहुधा तत्र क्षिप्तं जलं तक्रम् इव दृश्यते॥ ४० ॥

इस प्रयोग से जल तक्र होता है॥ ४० ॥

स्त्रीप्रथमप्रसूतदशदिने भस्म गहीत्वा मुष्टिद्वयेनाधोर्ध्वविन्यासेन जले प्रविशेत्। तत उर्ध्वरेखया उदककुम्भः शुष्यति। अधोभस्मरेखया पूरयति॥ ४१ ॥

इस प्रयोग से भस्म से घड़ा भर जाता है॥ ४१ ॥

रविदिने सानिञ्चामूलम् अपामार्गमूलम् उत्पाद्य पृथग्प्रक्षितदण्डाग्रो कटिधारितौ युध्यः॥ ४२ ॥

वङ्ग-आरबीज-बाला-प्रक्षितघनकर्पटे जलप्रक्षेपान् न पतति। तेनैव लिप्तवेत्रपटिकारोहणाज् जले न मगाति॥ ४३ ॥

इसके प्रयोग से जल में नहीं डूबता है॥ ४२-४३ ॥

भूमिलताखद्योतयोश् चूर्णं तैलविमर्दितं कृत्वा तेन यल् लिप्यते तद् रात्रौ ज्वलति॥ ४४ ॥

इससे वह लेपन रात में जलता है॥ ४४ ॥

ताम्रभाजने लवणेनामनर्कीं पङ्कयित्वा लोहभाजनं येन ताम्रम् इव दृश्यते॥ ४५ ॥

इससे लोहा ताँबा जैसा दिखता है॥ ४५ ॥

तप्ते गोहड्डे मनःशिलाचूर्णदानाज् ज्वलति शिखा॥ ४६ ॥

इससे शिखा जलती है॥ ४६ ॥

ऋण्टकबीजोपरि लघुपुष्पादिं संस्थाप्य जलदानात् पतति॥ ४७॥

इससे वह गिर जाता है॥ ४७ ॥

कुण्टीराकृतचटककोटने भ्रमरं प्रक्षिप्याकाशे त्यजेत।

भ्रमति॥ ४८॥

इस प्रयोग से वह भ्रमित होता है॥ ४८ ॥

शुष्कमत्स्यो भल्लातकतैलेनाविभाविते-
जलस्थश् चलति॥ ४६ ॥

इससे सूखी हुई मछली जल में तैरने लगती है॥ ४६ ॥

इत्य् एकल्लवीराख्ये श्रीचण्डमहारोषणतन्त्रे कुतूहलपटल एकविंशतिः॥

इस प्रकार एकलवीर नामक चण्डमहारोषण तन्त्र में कुतूहलनामक २१वाँ पटल समाप्त हुआ।

पटलः २२

अथ भगवान् आह।

भगवान् कहते हैं।

हृदि प्राणो गुदे ऽपानः समानो नाभिदेशके।
उदानः कण्ठदेशे तु व्यानः सर्वशरीरगः॥ १ ॥

हृदय में प्राण, गुदा में अपान, नाभि में समान, कण्ठ में उदान तथा व्यान वायु समग्र शरीर में रहता है॥ १ ॥

एषां मध्ये प्रधानो ऽयं प्राणवायुर् हृदि स्थितः।
श्वासप्रश्वासभेदेन जीवनं सर्वजन्तुनाम्॥ २ ॥

इनमें से हृदय में रहने वाला प्राण वायु प्रधान माना गया है। वही श्वास और प्रश्वास के भेद से सभी प्राणियों का जीवन है॥ २ ॥

षोडशसंक्रान्तियोगेन प्रत्येकेन दण्डम् एकम्।
चतुर्मण्डलवाहेन द्वायुतं शतषोडशम्॥ ३ ॥

१६ सङ्क्रान्तियोगों के साथ प्रत्येक एक दण्ड को लेकर चार मण्डलों के वहाव द्वारा दो --
------------------------- ॥ ३ ॥

दक्षिणस्पर्शवाहेन वह्निमण्डलम् उच्यते।
वामस्पर्शवाहे वायुमण्डलम् उच्यते॥ ४ ॥

दक्षिण की ओर स्पर्शपूर्वक वहाव को वह्निमण्डल और बायीं ओर जो बहाव है उसे वायुमण्डल कहते हैं॥ ४ ॥

वामदक्षिणसमस्पर्शाद् भवेन् माहेन्द्रमण्डलम्।
इदम् एव सुगा मन्दं च वारुणं मण्डलं भवेत्॥ ५ ॥

दक्षिण और बायीं ओर के समान बहाव को माहेन्द्र मण्डल कहते हैं। यही यदि उगा कभी नीचे के ओर हो तो उसे वारुण मण्डल कहते हैं॥ ५ ॥

ललना वामनाडी स्याद् रसना सव्ये व्यवस्थिता।
अवधूती मध्यदेशे हि सहजानन्दक्षणे वहेत्॥ ६ ॥

वाम नाडी को ललना और सव्य को रसना कहते हैं। बीच की नाडी अवधूती कहलाती है। वह सहजानन्द के अवसर पर बहती है॥ ६ ॥

प्रवेशाद् वैभवे सृष्टिः स्थितिनिश्चलरूपतः।
विनाशो निःसृते वायौ यावज्जीवं प्रवर्तते॥ ७ ॥

वायु जब उस मध्य में प्रविष्ट होती है तब वैभव की अवस्था है, स्थिर होने से निश्चल समाधि की अवस्था और बाहर निकलना ही विनाश है जो अन्य दो नाडियों से जीवन भर बहता रहता है॥ ७ ॥

प्रविशन् कुम्भको ज्ञेयः पूरकस् तस्य धारणात्।
निर्गमद्रेचको ज्ञेयो निश्चलः स्तम्भको मतः॥ ८ ॥

वायु जब प्रविष्ट होता है उसे कुम्भक, उसके धारण को पूरक एवं निर्गन को रेचक तथा निश्चल अवस्था को स्तम्भन कहते हैं॥ ८ ॥

चण्डरोषं समाधाय सप्रज्ञं कृत आरभेत्।
प्रविशन्तं गणयेद् वायुं शतसहस्त्रादिसङ्ख्यया॥ ९ ॥

भगवान् चण्डरोषण का ध्यान करते हुए प्रज्ञा सहित प्राणायाम का आरंभ करें। उस अवसर पर प्रवेश होते हुए वायु को सौ, हजार आदि संख्या द्वारा गणना करनी चाहिए॥ ९ ॥

सिध्यते तत्क्षणाद् एव बुद्धनाथवचो यथा।
वायुम् एवं गणेद् यस् तु प्रज्ञाम् आलिङ्ग्य निर्भरं॥ १० ॥

भगवान् तथागत का वचन है कि यदि एक एक वायु के प्रवेश की गणना कोई करता है प्रज्ञा को साथ लेकर, उसी में निर्भर होकर तो वह तत्काल सिद्धि को प्राप्त करता है॥ १० ॥

सिध्यते पक्षमात्रेण चण्डरोषणमुर्तितः।
दिव्यज्ञानसमायुक्तः पञ्चाभिज्ञो हि जायते॥ ११ ॥

चण्डरोषण को ध्यान पूर्वक यह कृत्य करने से एक पक्ष में ही वह दिव्य ज्ञान पूर्ण होकर पञ्चाभिज्ञ हो जाता है॥ ११ ॥

चण्डरोषसमाधिस्थः स्वस्त्रीम् आलिङ्ग्य निर्भरं।
हृदयेन च हृदं गृह्य गृह्यं गुह्येन सम्पुटम्॥ १२ ॥
मुखेन च मुखं कृत्वा निश्चेष्टः सुखतत्परः।
हृदयान्तर्गतं चन्द्रं ससूर्यं तु प्रभावयेत्॥ १३ ॥
तत्स्थैर्यबलेनैव सर्वज्ञानी भवेन् नरः॥ १४ ॥

श्रीचण्डरोषण के समाधि में निमग्न होकर अपने स्त्री का आलिङ्गन पूर्वक हृदय से हृदय को, गुह्य को गुह्य से सम्पुट कर, मुख से मुख का आलम्बन पूर्वक, सुख में एकाग्र होकर निष्चेष्टता को अपनाते हुए हृदय में अवस्थित सूर्य सहित चन्द्र की भावना करें। उसके स्थिर बल से ही उसी क्षण वह साधक सर्वज्ञ हो जाता है॥ १२-१४ ॥

शमत्वाहरमात्रेण भूतं भविष्यं च वर्तमानं।
परचित्तं च जानाति सत्यम् एतद् वदाम्य् अहम्॥ १५ ॥

समता में अवस्थित होकर वह योगी भूत, भविष्य तथा वर्तमान को साक्षात्कार कर लेता है। तथा परचित्त को भी जानता है। यह मैं सत्य कह रहा हूँ॥ १५ ॥

तथा तेनैव योगेन कर्णमध्ये विभावयेत्।
शृणुते सर्वदेशस्थं शब्दं संनिहितं यथा॥ १६ ॥

और उसी योग से कर्ण के अन्दर भावना करने से सभी देशों में अवस्थित शब्दों को सुन सकता है जैसा कि वह शब्द नजदीक का ही हो॥ १६ ॥

तथा नेत्रे प्रभावित्वा त्रैलोक्यं च प्रपश्यति।
नासायां च तथा ध्यात्वा जानीते सर्वगन्धकम्॥ १७ ॥
जिह्वार्थं च तथा ध्यात्वा दूरं स्वादं प्रविद्यते।
स्वलिङ्गाग्रे तथा ध्यात्वा जानीते सर्वस्पर्शकम्॥ १८ ॥

शिरोमध्ये तथा ध्यात्वा सर्वसामर्थ्यवर्धनम्॥ १६ ॥
यत्र तत्र चित्तं वायुना समरसीकृतं।
निरुद्धम् तत्र तत्रैव तद् एव प्रतिबिम्बते॥ २० ॥
शान्तिकं पौष्टिकं वश्यम् आकृष्टिं मारणम् तथा।
उच्चाटनं च सर्वं वै भावनयैव प्रसिध्यति॥ २१ ॥

इसी प्रकार नेत्रों में उसी योग से ध्यान लगाने से तीनों लोकों को देख सकता है। नासिका में ध्यान करने से संसार के सभी गन्धों को वह जान सकता है। जिह्वा में भावना से सुदूर के रसों को भी तत्काल जान सकता है। अपने लिङ्ग के अग्र में भावना करने से सभी स्पर्शों को जान जाता है। शिर के ऊपर ध्यान करने से वह सर्व सामर्थ्य युक्त हो जाता है। अर्थात् जिस ज卐ह प्राणवायु के सहयोगपूर्वक चित्त को ले जाता है, वहीं वह निरुद्ध होकर उसी पदार्थ को जान लेता है। शान्ति कर्म, पुष्टिकर्म, वशिता कर्म, आकर्षण, उच्चाटन आदि सभी भावनाओं से ही सिद्ध होते हैं॥ १७-२१॥

कुम्भकादिप्रयोगेन चतुर्दृष्टिं नियोजयेत्।
वामावलोकिनीदृष्टिः कुम्भकेन वशीकरेत्॥ २२ ॥
दक्षिणाकर्षणी ज्ञेया पूरकेन नियोजिता।
ललाटस्था तु या दृष्टिर् मारणी रेचकेन सा॥ २३ ॥
नास्य् आग्रस्थिता दृष्टिर् उच्चाटनी स्तम्भकेन हि।
कुम्भको हि परापुष्पे स्नुहीवृक्षे च पूरकः॥ २४ ॥
रेचकः सरसे वृक्षे स्तम्भकः सचले तृणे।
चिन्तितव्यो हि षण्मासं पूर्वदृष्टिनियोजितः॥ २५ ॥

कुम्भक रेचक आदि प्राणायामों के प्रयोग पूर्वक चारों ओर दृष्टि देनी चाहिए तथा वामाद्यों को वशीकरण के लिए कुम्भक द्वारा वशीकार करना चाहिए। पूरक योग के द्वारा किए गए प्रयोग को दक्षिणा कर्षणी कहा गया है। ललाट की यौगिक-दृष्टि मारणी है जो रेचक से होती है। नासिका के अग्र भाग में अवस्थित दृष्टि को उच्चाटनी कहते है जो स्तम्भन से होती है। कुम्भक को परापुष्प में, स्नुहीवृक्ष में पूरक, सरस वृक्ष में रेचक, सचल तृण में स्तम्भक का चिन्तन करना चाहिए और ६ महीनों तक दृष्टि को वहीं

रखकर साधना करनी चाहिए॥ २२-२५ ॥

सर्वसामर्थ्ययुक्तस् तु सिध्यते चित्तरोधतः।
चित्तस्य रोधनाद् वायो रोधो वायोश् च रोधनाद्॥ २६ ॥
चित्तस्यापि भवेद् रोधो अन्योन्यगतिचेष्टितः।
प्रज्ञोपायैकयोगे तु वज्रपद्मसमागमे॥ २७ ॥
निरुद्धो हि सुखं भुञ्जन् सिध्यते शोचनप्रभुः।
वज्रसत्त्वादयो बुद्धाः सहायास् तस्य मन्त्रिणः॥ २८ ॥
किं पुनर् लौकिका देवाः कीर्तिताः शङ्करादयः।
सुगुप्तः सर्वतन्त्रेषु मया तत्त्वाचलः प्रभुः॥ २९ ॥

चित्त के निरोध से वह यागी सर्वसामर्थ्य युक्त हो जाता है। चित्त के निरोध से प्राण का निरोध और प्राण के निरोध से चित्त को निरोध हो जाता है। इस प्रकार एक दूसरे से एक दूसरे का निरोध होता है। अतः प्रज्ञा और उपाय के योग से वज्र पद्म के समागम द्वारा निरुद्ध होकर सुख का उपभोग करते हुए वह सिद्ध हो जाता है। उसके लिए वज्र सत्त्व एवं बुद्धगण भी उसके लिए मन्त्री के तरह ही सहयोग करते हैं। फिर क्या कहना है जो लौकिक देवता हैं जैसे शङ्कर आदि हैं। वे तत्त्वाचल प्रभु सभी तन्त्रों में मैंने गोपित किए हैं॥ २६-२९॥

यस्मै वाराधनं कृत्वागता बुद्धा नभोपमाः।
गङ्गावालुकातुल्या भविष्यन्ति महर्द्धयः॥ ३० ॥
वर्तमानापि वै बुद्धा बुद्धज्ञानसमन्विताः।
तस्माद् योगी सदा नित्यं चिन्तयेद् अचलं प्रभुम्॥ ३१ ॥
अचलं हि यो न जानाति तस्य जन्मेह निष्फलम्।
न हि तेन विना सिद्धिः क्षुद्रमात्रापि लभ्यते॥ ३२ ॥

उसी अचल प्रभु की आराधना से ही सभी बुद्ध आकाश के तरह व्यापक एवं गङ्गा के बालुका के तरह अनन्त एवं ऐश्वर्य सम्पन्न भी हुए हैं। वर्तमान के बुद्ध भी उनके ही तरह बोधि ज्ञान से समन्वित हुए हैं। अतएव निरन्तर योगी को उन अचल प्रभु का ही चिन्तन करते रहना चाहिए। जो

अचल प्रभु को नहीं जानता है उसका जीवन निष्फल है। उन प्रभु के चिन्तन और कृपा बिना छोटी सी भी सिद्धि नहीं मिल सकती है॥ ३०-३२ ॥

इत्य् एकल्लवीराख्ये श्रीचण्डमहारोषणतन्त्रे वायुयोगपटलो द्वाविंशतितमः॥

इस प्रकार एकल वीर नामक चण्ड महारोषण तन्त्र में वायुयोग नामक
२२वाँ पटल समाप्त हुआ॥

पटलः २३

अथ भगवान् आह।

भगवान् कहते हैं।

पादतालुकां विध्वा नाभिवेधात् त्रिरात्रेण मृत्युः स्यात्। पादतालुकां विध्वा चक्षुर्वेधान् मासत्रयेण। पादतालुकां विध्वा नासिकावेधेन मासत्रयेण। कुटिप्रावकाले समं हञ्छिकया वर्षेण। नापितगर्तिवेधात् पञ्चवर्षेण। जिह्वाग्रादर्शने त्रिवासरैः। कर्णाग्रवेधाच् चतुर्मासैः। ऊर्णावेधाद् दिनैकेन। सुरतस्य मध्ये ऽन्ते वा हञ्छिकया मासेन। समं सर्वकनिष्टः आवेधान् मासेन। समं हृत्कण्ठवेधात् पक्षत्रयेण। समं तालुकात्रयवेधात् त्रिदिनैः। सुरते कर्णयोर् घण्टानादात् त्रिमासैः ॥ १ ॥

प्राणवायु के द्वारा विभिन्न अवयवों में वेध से मृत्यु होती है। पादतलों का वेध करके नाभि के वेध से तीन रात्रि में मृत्यु होती है। पैर के तलवे के चार वेधों से तीन महीनों में मृत्यु होती है। उसी प्रकार पैर से लेकर नासिका के वेध से तीन महीनों में, समान हिचकी से एक वर्ष में, तालु के ऊपर के वेध से पाँच वर्षों में, जिह्वा के अग्र भाग के अदर्शन से तीन दिनों में, कान के आगे भाग के वेध से चार महीनों में, ऊर्णा के वेध से एक ही दिन में, सुरत के मध्य या अन्त में छिंकने से एक महीने में, सभी नीचे के भागों के वेध से एक मास में, समान रूप से हृदय और कण्ठ के वेध से तीन पक्षों में, तालुका त्रय के समान वेध से तीन दिनों में, सुरत के अवसर पर घण्टानाद के श्रवण से तीन महीनों में मृत्यु होती है॥ १ ॥

कर्णमूलभ्रूमध्यमस्तकाग्रेषु पृथक् पृथग् वेधाद् दिनैके। पादाङ्गुष्ठम् आरभ्य नाभिपर्यन्तवेधाच् छण्मासेन। नासाग्रमांसाशैथिल्यात् सप्तरात्रेण। कपोलमांस%छेदात् पञ्चमासैः।

चक्षुःस्यन्दनादर्शनात् पञ्चमासैः। नासिकावक्रात् सप्तदिनैः। हृदयनिम्नात् पक्षेन। जिहवामध्ये कृष्टरेखया द्विरात्रेण। नखे रक्ततादर्शनाच् छण्मासैः। दन्तशोषाच् छण्मासेन। अरुन्धत्यदर्शनाच् छण्मासेन। शीतादौ काले विपर्ययात् सर्वत्रच्छिद्रदर्शनात् पक्षेण। हःकारस्य शीतात् फुःकार-स्योष्णाद् दशाहेन। अनामिकामूले कृष्टरेखादर्शनेनाष्टादशदिनेन॥ २ ॥

कर्णमूल, भ्रूमध्य और मस्त के अग्रभाग में प्राणों के वेध से एक ही दिन में मृत्यु होती है। पादाङ्गुष्ठ से लेकर नाभि तक के वेध से ६ महीनों में, नासिका के अग्रमांस के वेध से सात रात्रियों में, गालों मांस के छेद से पाँच महीनों में, चक्षु के पक्षों के अदर्शन से पाँच महीनों में, नासिका के वक्र होने से सात दिनों में, हृदय के नीचे वेध से एक पक्ष में, जीभ के बीच में वेध से कृष्ट रेखा से दो रातों में, नाखुन में लाल दिखने से ६ महीनों में, दाँतों के सूखने से ६ महीनों में, अरुन्धती के अदर्शन से ६ महीनों में, उलटा देखने और सर्वत्र छेद देखने से एक पक्ष में, ह करने से शीत और फू------ करने से उष्ण वायु के वहन से दश दिनों में, और अनामिका के मूल में कृष्ट रेखा के अदर्शन से १८ दिनों में मृत्यु होती है॥ २ ॥

देहापमार्जन शब्दाश्रुतेः सर्वाङ्गशीताच् च दशाहेन। स्नातमात्रस्य हत्पादशोषात् द्विमासेन। गात्रदुर्गन्धात् त्रिरात्रेण। गात्रस्तब्धाद् दिनैकेन। वामवर्तमूत्राच् छण्मासेन। नाभेर् विपर्ययात् पञ्चाहेन। नासाग्रादर्शनात् पञ्चमासेन। नेत्राङ्गुलीपीडने ज्योतिरदर्शनाच् छतदिनैः। कर्णध्वन्यश्रुतेः वर्षेण। परचक्षुषि प्रतिबिम्बादर्शनात् पक्षेण॥ ३ ॥

शरीर को रगड़ने पर शब्द (आवाज) न सुनने पर तथा पूरा शरीर ठण्डा होने से १० दिनों में, स्नान करते ही हाथ और पैर सूखने पर दो महीनों में, शरीर से दर्गन्ध आने से तीन रातों में, शरीर पूरा स्तब्ध होने से एक ही दिन में, दक्षिण की ओर से बायीं ओर मूत्र होने से ६ महीनों में, नाभि उलटा होने से पाँच दिनों में, नासिका के अग्रभाग न दिखने से पाँच महीनों में, अंगुलियों से आँख बन्द करने पर ज्योति न देखने पर १०० दिनों में, कान बन्द करने पर ध्वनि के न सुनने पर एक वर्ष में तथा दूसरे के आँखों देखने पर छोटी प्रतिमा के न देखने पर एक पक्ष में मृत्यु होती है॥ ३ ॥

एवं ज्ञात्वा तद्वञ्चनं परलोकं च चिन्तयेत्॥ ४ ॥

इस प्रकार के ज्ञान से उसे छलने का उपाय का अवलम्बन करना चाहिए साथ ही परलोक का चिन्तन भी करें॥ ४ ॥

इत्य् एकल्लवीराख्ये श्रीचण्डमहारोषणतन्त्रे मृत्युलक्षणपटलस् त्रयोविंशतितमः॥

इस प्रकार एकलवीर नामक श्रीचण्डमहारोषण तन्त्र में मृत्यु लक्षण नामक २३वाँ पटल पूरा हुआ।

पटलः २४

अथ भगवान् आह।

भगवान् कहते हैं।

मातृपितृसमायोगात् पञ्चभूतात्मकः शशी।
पञ्चभूतात्मकः सूर्यो द्वयोर् मीलनयोगतः॥ १ ॥
जायते तत्र वै सत्त्वः प्रज्ञोपायात्मकः पुनः।
अस्थिबन्धा भवेच् चन्द्रात् सूर्यान् मांसादिसंभवः॥ २ ॥

माता और पिता के संयोग से यह पञ्च भूतात्मक शरीर है। यह चन्द्र भी पञ्च भूतात्मक है तथा यह सूर्य भी पञ्च भूतात्मक है। दोनों सूर्य-चन्द्र-पञ्चभूतों के योग से ही सत्त्व उत्पन्न होता है जो प्रज्ञोपायात्मक है। शरीर के अस्थियों का बन्धन चन्द्र से तथा महीने दिन आदि का योग सूर्य से होते हैं॥ १-२॥

आत्मशून्यो भवेद् देहः सत्त्वानां कर्मनिर्मितः।
मायोपमस्वरूपो ऽयं गन्धर्वनगरोपमः॥ ३ ॥
शक्रचापसमश् चायं जलचन्द्रोपमो मतः॥ ४ ॥

यह शरीर आत्मा से रहित ही है जो उनके पूर्व कर्मों से निर्मित है। यह समग्र जगत् माया के तरह तथा गन्धर्व नगर के समान है यह समझना चाहिए। इन्द्र धनुष के समान यह जगत् तथा जीवन है, जो जल चन्द्र के उपमा के तरह ही जानना चाहिए॥ ३-४॥

इत्य् एकल्लवीराख्ये श्रीचण्डमहारोषणतन्त्रे देहस्वरूपपटलश् चतुर्विंशतितमः॥

इस प्रकार एकलवीर नामक श्रीचण्डमहारोषण तन्त्र में देहस्वरूप नामक २४वाँ पटल समाप्त हुआ।

पटलः २५

अथ भगवती आह॥

भगवती कहती है।

अपरं श्रोतुम् इच्छामि प्रज्ञापारमितोदयम्।
प्रसादं कुरु में नाथ, संक्षिप्तं नातिविस्तरम्॥ १ ॥

हे भगवन्! और भी मैं सुनना चाहती हूँ जो प्रज्ञापारमिता का उदय है। किन्तु अतिविस्तार में न बतायें। कृपया आप प्रसन्न हों और संक्षेप में ही बतायें॥ १ ॥

अथ भगवान् आह॥

भगवान् कहते हैं।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि प्रज्ञापारमितोदयम्।
सत्त्वपर्यङ्किनीं देवीं षोडशाब्दवपुष्मतीम्॥ २ ॥
नीलवर्णां महाभागां अक्षोभ्येण च मुद्रिताम्।
रक्तपद्मोद्यतां सव्ये लीलया वामहस्तके॥ ३ ॥
स्थितं वै कामशास्त्रं तु पद्मचन्द्रोपरिस्थिताम्।
पीनोन्नतकुचां दृप्तां विशालाक्षीं प्रियंवदाम्॥ ४ ॥
सहजाच[ल]समाधिस्थो देवीम् एताम् तु भावयेत्।
हूंकारज्ञानसम्भूतां विश्ववज्रीं तु योगिनीम्॥ ५ ॥
भावयेत् क्रोडतो योगी ध्रुवं सिद्धिम् अवाप्नुते।
अथवा भावयेच् छवेतां वाणीं धीःकारसम्भवाम्॥ ६ ॥

अब मैं प्रज्ञापारमिता के उदय के विषय में बताने जा रहा हूँ। प्राणियों को अपने गोद में रखने वाली या प्राणियों के गोदों में रहने वाली वह देवी है

जो १६ वर्षों की जैसी है तथा जिनका शरीर अत्यन्त समुज्वल है, नीलवर्ण वाली, महान् वाग्यवती, अक्षोभ्य से समन्वित, रक्त पद्म को साथ ली हुई - दाहिने हाथ में, वाम हाथ में लीलापूर्वक कामशास्त्र को रखी हुई, जो पद्म तथा चन्द्र में अवस्थित है, पीन तथा उन्नत कुच समूह वाली, जलती हुई सी, विशालाक्षी, प्रियंवदा एवं सुमनो हारिणी प्रज्ञापारमिता नामक देवी की भावना करनी चाहिए - सहज समाधि में रहकर, योगी को, जो देवी हूँ कार ज्ञान से सम्भूत, विश्ववज्री, योगिनी है उसकी भावना योगी को करना चाहिए। इस प्रकार के भावना-ध्यान से निश्चय ही योगी सिद्धि को प्राप्त करता है। अथवा श्वेत वाणी, जो धीः कार से समुद्भूत है उनका ध्यान करना चाहिए॥ २-६॥

मुद्रितां शाश्वतेनैव पीतां वज्रधात्वीश्वरीम्।
रत्नेशमुद्रितां वंजां रक्तां वा कुरुकुल्लिकाम्॥ ७ ॥
अमिताभमुद्रितां देवीं ह्रींकारज्ञानसम्भवाम्।
तारां वा श्यामवर्णां च तांकारज्ञानसम्भवाम्॥ ८ ॥
अमोघमुद्रितां ध्यायात् पूर्वरूपेण मानवः।
सत्त्वपर्यङ्कसंस्थस् तु सौम्यरूपेण संस्थितः॥ ९ ॥

धीकार समुद्भूत, मुद्रा में रत, पीत वर्ण वाली, वज्र-धातु ईश्वरी, रत्नेश के साथ मुद्रा में रत, वँ कार से युक्त, रक्तस्वरूपिणी, अथवा कुरुकुल्ला, जो अमिताभ से युक्त, देवी, ह्रीकार ज्ञान से सम्भूत, तारा, श्याम वर्णी, तांकार से उत्पन्न, अमोघ सिद्धि से मुद्रित देवी का ध्यान पूर्ण रूप से, योगी सत्त्वपर्यङ्क में रहकर सौम्यरूप से आसन में स्थित होकर पूर्णरूप से पहले बताए हुए नियमानुसार सिद्धि करें॥ ७-९॥

खडगपाशधरः श्रीमान् आलिङ्गाभिनयः कृती।
स्वकुलीं परकुलीं वा कन्यां गृह्य प्रभावयेत्॥ १० ॥
अनेन सिध्यते योगी मुद्रया नैव संशायः।
अथवा प्रतिकृतीं कृत्वा साधयेन् मृत्त्रादिसंस्कृताम्॥ ११॥
सहजचण्डसमाधिस्थो जपेद् एकाग्रमानसः॥ १२ ॥

प्राणी को अपने में समाहित किए हुए, सौम्यरूप से रहने वाले, खड्गपाश धारण करने वाले, धीमान्, जो चण्डमहारोषण हैं वे स्वकुल की

अथवा परकुल की कन्या को लेकर प्रभावित हैं यह ध्यान करें। इस साधना से योगी तत्काल सिद्ध होता है, इसमें सन्देह नहीं है। अथवा मिट्टी आदि से निर्मित प्रज्ञापारमिता की मूर्ति बनकर भी सिद्धि कर सकते हैं। इस प्रकार सहज चण्ड समाधि में रहकर एकाग्रमन से जप करना चाहिए॥ १०-१२॥

तत्रायं जप्यमन्त्रः। ॐ विवज्रि आगच्छ आगच्छ हूं स्वाहा। ॐ वज्रसरस्वती आगच्छ आगच्छ धीः स्वाहा। ॐ वज्रधातवीश्वरी आगच्छ आगच्छ वं स्वाहा। ॐ कुरुकुल्ले आगच्छ आगच्छ ह्रीं स्वाहा। ॐ तारे आगच्छ आगच्छ तां स्वाहा॥ १३ ॥

यहाँ यह जप मन्त्र है। ॐ विवज्रि आगच्छ आगच्छ हूं स्वाहा। ॐ वज्रसरस्वती आगच्छ आगच्छ धीः स्वाहा। ॐ वज्रधातवीश्वरी आगच्छ आगच्छ वं स्वाहा। ॐ कुरुकुल्ले आगच्छ आगच्छ ह्रीं स्वाहा। ॐ तारे आगच्छ आगच्छ तां स्वाहा॥ १३ ॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि एकवीरं तु मण्डलम्।
चतुरस्त्रं चतुर्द्वारं चतुस्तोरणमण्डितम्॥ १४ ॥
पीतवर्णं तु कर्तव्यं मध्ये पद्मं चतुर्दलम्।
तस्य चाग्नौ दलं श्वेतं नैरृते रक्तसंनिभम्॥ १५ ॥
वायव्ये पीतवर्णं तु श्यामम् ऐशानकोणके।
मध्ये वै कृष्णवर्णं तु तत्राचलं प्रकल्पयेत्॥ १६ ॥
सूर्यस्थं वाथवा श्वेतं पीतं वा रक्तम् एव वा।
श्यामं वा पञ्चभिर् बुद्धैर् एकरूपं विचिन्तयेत्॥ १७ ॥

अब मैं, एक वीर नामक मण्डल के विषय में बताने जा रहा हूँ। जो मण्डल चार कोनों में फैला होता है तथा चारों ओर तोरणों से मण्डित होता है। बीच में पीले वर्ण का पद्म बनाना चाहिए, जो चार दलों से समन्वित हो। उसके अग्र भाग में सफेद दल होता है। नैग त्य में रक्तवर्ण का होता है। वायव्य दिशा में पीला, ऐशान कोण में श्याम, मध्य में कृष्ण वर्ण के अचल की कल्पना करनी चाहिए। सूर्य में स्थित हो अथवा श्वेत, पीत, रक्त अथवा श्याम वे सब पञ्च बुद्धों से समन्वित या एक रूप का चिन्तन करें॥ १४-१७ ॥

लोचनाम् अग्निकोणे च चन्द्राशोकविधारिणीम्।
वामदक्षिणकराभ्यां शरगान्द्रकरप्रभाम्॥ १८ ॥
नैरृते पाण्डरादेवीं धनुर्बाणधरां पराम्।
रक्तां वायव्यकोणे तु मामकीं पीतसंनिभाम्॥ १९ ॥
घटधान्यशिखाहस्तां श्यामाम् ऐशानकोणके।
तारिणीं वरदां सव्ये वामे नीलोत्पलधारिणीम्॥ २० ॥
एताश् चन्द्रासनाः सर्वा अर्धपर्यङ्कसंस्थिताः।
रागवज्रीं न्यसेत् पूर्वद्वारे शक्रकृतासनाम्॥ २१ ॥

उस मण्डप के अग्निकोण में चन्द्र और अशोक को धारण करने वाली, वाम दक्षिण करों में शरत् ऋतु का चन्द्रयुक्त, नैऋत्य में पाण्डुरा देवी जो धनु और बाणधारिणी रक्तवर्णी, वायव्य में पीतवर्णी मामकी देवी, ऐशान कोण में घड़े में धान्य धारण करने वाली श्यामा, नीलोत्पल धारिणी वाम हाथ में, सव्य में वरद मुद्रा युक्त तारा को स्थापित करें। वे सब चन्द्रासन में स्थित तथा अर्घपर्यङ्क में अवस्थित रागवज्री का न्यास करें जो पूर्व द्वार में वज्रासन में स्थित है॥ १८-२१॥

खड्गकर्परधरां रक्तां द्वेषवज्रां तु दक्षिणे।
कर्त्रितर्जनीकरां नीलां यमेन कृतविष्टराम्॥ २२ ॥
पश्चिमे मानवज्रां तु पर्शुवज्रधराकुलीम्।
मयूरपिच्छवस्त्रां तु वरुणस्थां न्यसेत्॥ २३ ॥

खड्ग - कर्पर धारिणी, रक्ता द्वेष वज्री को दक्षिण में, खड्ग को तर्जनी में धृत जो नील वर्ण वाली यम से संयुक्त, पश्चिम में - मान वज्रा को जो परशु, वज्र को धारण करने वाली, मयूर के पंख वस्त्रवाली वरुणस्थ की स्थापना करें॥ २२-२३ ॥

सूर्यासनास् त्व् अमी प्रत्यालीढपदाः -
सर्वाः क्रुद्धा मुक्तमूर्धजाः॥ २४ ॥

वे सब देवियाँ सूर्यासन में हैं, अपने पद को धारण की हुई, सभी क्रुद्ध स्वभाववाली तथा बाल खुले हुए हैं॥ २४ ॥

चत्वारो हि घटाः कोणे कर्तव्याः पीतसंनिभाः।
अस्य भावनमात्रेण योगिन्यष्टसमन्वितः॥ २५ ॥
त्रैलोक्यस्थितः स्त्रीणां स भर्ता परमेश्वरः॥ २६ ॥

चारों कोनों में चार घड़े रख दें जो पीले रंग से रंगे हों। इसके भावामात्र से योगिनियाँ अष्ट सिद्धियों से समन्वित होती हैं। तीनों लोकों में स्थित वह स्त्रियों का पति परमेश्वर ही है॥ २५-२६ ॥

अथान्यां सम्प्रवक्ष्यामि चण्डमहारोषणभावनां॥

अब फिर दूसरी चण्डमहारोषणभावना को बताने जा रहा हूँ।

विश्वपद्मोदरे देवं कल्पयेच् चण्डरोषणम्।
रामदेवं भवे ऽगौ रक्तवर्णं तु नैरृते॥ २७ ॥
पीतं वै कामदेवं तु श्यामं माहिल्लनामकम्।
वायव्ये कृष्णवर्णकोकिलासुरसंज्ञकम्॥ २८ ॥
कर्त्रिकर्परकराश् चैते संस्थितालीढपादतः।
भगवतः पश्चिमे देवी स्थिता वै पर्णशावरी॥ २९ ॥
अस्यैव ध्यानयोगेन दग्धमत्सादिपूजया-
बन्धयेत् सर्वदेवान्॥ ३० ॥

विश्वात्मक कमल के उदर में चण्डरोषण की कल्पना करें। आग्नेय कोण में रामदेव को, नैर्ऋत्य में रक्तवर्ण, पीले काम देव को, श्याम वर्ण के माहिल्ल को वायव्य में कृष्णवर्ण के कोकिलासुर को खड्ग तथा कर्जर हाथ में लिए हुए वे सब पैर को आगे किए हुए भगवान् के पश्चिम में पर्णशावरी देवी अवस्थित है। इन्हीं के ध्यानपूर्वक जली हुई मछली के पूजा से सभी देवों का बन्धन करें॥ २७-३० ॥

पीतया प्रज्ञया युक्तं वामे च श्वेतपद्मया।
नीलं वै चण्डरोषं तु रक्तया कृष्णयाथवा॥ ३१ ॥
सिध्यते तत्क्षणं योगी भावनापरिनिष्ठितः।
एवं श्वेताचलादींश् च भावयेद् गाढयत्नतः॥ ३२ ॥
बीजेनापि विना ध्यायाद् एकचित्तसमाहितः।
पिबन् भुञ्जन् तिष्ठन् गच्छञ् चडक्रमन्न अपि॥ ३३ ॥

सर्वावस्थास्थितो योगी भावयेद् देवताकृतिम्।
अथवा केवलं सौख्यं योगिनीद्वंद्व नन्दितम्॥ ३४ ॥
तावद् विभावयेद् गाढं यावत् स्फटतां व्रजेत।
गते तु प्रस्फुटे योगी महामुद्रेण सिध्यति॥ ३५ ॥

वाम भाग में पीले वर्ण तथा प्रज्ञा से तथा श्वेत पद्म से युक्त भी, नील वर्णात्मक चण्डरोष को रक्त अथवा कृष्ण वर्ण से युक्त भावना करने से तत्काल ही योगी सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार श्वेताचल आदि को गंभीरता से भावना करें। बीज के बिना भी एक चित्त होकर, पीते हुए, खाते हुए, सोते हुए, खड़े होते हुए, जाते, घूमते हुए भी - सभी अवस्थाओं में रहते हुए देवता की आकृति का ध्यान करें। अथवा केवल योगिनियों के द्वार निर्मित द्वन्द्व का ध्यान तब तक करें - गाढ-रूप से जब तक वह पूर्ण रूप से प्रकट नहीं होता। वह, प्रस्फुट-प्रकट होने पर महामुद्रा द्वारा योगी तत्क्षण ही सिद्ध हो जाता है॥ ३१-३५॥

इत्य् एकल्लवीराख्ये श्रीचण्डमहारोषणतन्त्रे देवता साधनपटलः पञ्चविंशतितमः॥

इस प्रकार एकलवीर नामक चण्डमहारोषणतन्त्र में देवता साधन नामक
२५वाँ पटल पूर्ण हुआ।

इदम् अवोचद् भगवान् श्रीवज्रसत्त्वस् ते च योगियोगिनीगणा
भगवतो भाषितम् अभ्यनन्दन्न इति॥

भगवान् ने यह कहा, श्रीवज्रसत्त्व, योगी योगिनियों ने
भगवान् के इस वक्तव्य का अभिनन्दन किया।

इत्य् एकल्लवीरनामचण्डमहारोषणतन्त्रं समाप्तम्।
श्रीचण्डमहारोषण तन्त्र पूर्ण हुआ।

ये धर्मा हेतुप्रभवा हेतुं तेषां तथागतो ह्य् अवदत्।
तेषां च यो निरोध एवं वादी महाश्रमणः॥

जो धर्महेतु से उत्पन्न हैं उनके हेतुओं को तथागत ने बताया है।
उनका भी जो निरोध है यह भी बताया है। इस प्रकार जो
जानता और कहता है वह महाश्रमण है।

योगीन्द्रानन्दपादानां शिष्येण काष्ठमण्डपे।
न्यौपाने काशीनाथेन पाठभेदादि टिप्पणैः -
संस्कृतं हिन्दी वायव्य च शब्दितं यत्नतः स्वयं तन्त्रमेकलवीराख्यं
श्रीचण्डरोषणान्वितम् भूयात् प्रीतिपरा रम्या सत्त्ववाञ्छाप्रपूरणम्॥

Other books of related interest published by us:

1. ***A Concise Dictionary of Indian Philosophy*** by *John Grimes*
2. ***The Aphorisms of Siva*** trans. with exposition and notes by *Mark S.G. Dyczkowski*
3. ***A Journey in the World of the Tantras*** by *Mark S.G. Dyczkowski*
4. **स्पन्दप्रदीपिका** ***Spandapradīpikā*** (Sanskrit) — A Commentary on the Spandakārikā by Bhagavadutpalācārya Edited by *Mark S.G. Dyczkowski*
5. ***Vijnana Bhairava : The Practice of Centring Awareness*** trans. and commentary by *Swami Lakshman Joo*
6. ***Abhinavagupta's Commentary on the Bhagavad Gita : Gītārtha Saṁgraha*** trans., introd. & notes by *Boris Marjanovic*
7. ***Stavacintāmaṇi*** of Bhaṭṭa Nārāyaṇa with the Commentary by Kṣemarāja **स्तवचिन्तामणिः** Translated from Sanskrit with Introduction and Notes by *Boris Marjanovic*
8. ***Aspects of Tantra Yoga*** by *Debabrata SenSharma*
9. ***An Introduction to the Advaita Saiva Philosophy of Kashmir*** by *Debabrata SenSharma*
10. **आगम-संविद्** ***Āgama-Saṁvid*** (Sanskrit) **डॉ० कमलेश झा**
11. ***The Khecarīvidyā of Ādinātha*** : A critical edition and annotated translation of an early text of ***haṭhayoga*** by *James Mallinson*

11. ***The Khecarīvidyā of Ādinātha*** : A critical edition and annotated translation of an early text of ***haṭhayoga*** by *James Mallinson*
12. ***Shaivism in the Light of Epics, Puranas and Agamas*** by N.R. Bhatt
13. ***The Hindu Pantheon in Nepalese Line Drawings*** : Two Manuscripts of the Pratiṣṭhālakṣaṇasārasamuccaya compiled by *Gudrun Buhnemann*
14. ***Selected Writings of M.M. Gopinath Kaviraj***
15. **शिव-संबोध और गंगा प्रतीक** - डॉ० रमाकान्त पाण्डेय
16. ***Śrī Tantrālokaḥ*** (Sanskrit Text with English Translation) (3 vols.) by *Gautam Chatterjee*
17. ***Fundamentals of the Philosophy of Tantras*** by *Manoranjan Basu*
18. ***Yantra Images*** Compiled and edited by *Dilip Kumar*
19. ***White Shadow of Consciousness***: Recognition of the actor by *Gautam Chatterjee*
20. ***The Stanzas on Vibration*** by *Mark S.G. Dyczkowski*
21. **Tantrasāra** (Text with English Translation) by *Gautam Chatterjee.*

डॉ० काशीनाथ न्यौपाने संस्कृत वाङ्मय के विशिष्ट साधक हैं। इन्होने वाराणसी में रहकर प्रसिद्ध विद्वान् स्वामी योगीन्द्रानन्द जी के सान्निध्य में वेदान्त, न्याय, मीमांसा, बौद्धदर्शन, बौद्धतन्त्र, शैवदर्शन, शाक्ततन्त्र, पालि, प्राकृत एवं जैन दर्शन का गहन अध्ययन किया है। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से पूर्वमीमांसा एवं बौद्धदर्शन में स्वर्णपदक सहित आचार्य करने के बाद विद्यावारिधि उपाधि प्राप्त किया है।

संस्कृत लेखन में सिद्धहस्त डॉ० न्यौपाने द्वारा लिखित मीमांसा पदार्थ विज्ञानम्, मीमांसातर्क भाषा, मीमांसानयभूषनम्, बौद्धदर्शनभूमिः, बौद्धप्रमाणशास्त्रम्, वज्रयानमहाशास्त्रम्, सौत्रान्तिकदर्शनम्, वज्रयोगसाधना, बौद्धागमरहस्यम्, दर्शनसंदोहः, तारिणीवरिवस्या, लाहिडी क्रियायोग संहिता आदि मौलिक कृतियाँ संग्रहणीय ग्रन्थ के रूप में प्रसिद्ध हैं जो विभिन्न विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में भी निर्धारित हैं।

नेपाल संस्कृत विश्वविद्यालय के पूर्व रिसर्च डाइरेक्टर डॉ० न्यौपाने सम्प्रति नेपाल संस्कृत विश्वविद्यालय, काठमाण्डु में बौद्धदर्शन विभाग के रूप में कार्यरत हैं।

ISBN 81-86117-26-1
9 788186 117262

₹ 325